युगांतर-साहित्य-माला का दूसरा पुष्प

अवध उपाध्याय

पुस्तक-परिचय

इन कहानियों में से कुछ मैंने अपने मित्रों से सुनी हैं, कुछ पुस्तकों में पढ़ी हैं और कुछ स्वयं सोची हैं। हिंदी-संसार के सामने मैं छोटी-छोटी बीस कहानियों का संग्रह इस बार रखता हूँ और आशा है कि कुछ दिनों के बाद, इसी प्रकार की कुछ और कहानियाँ पाठकों के सामने उपस्थित करूँगा।

पन्ना-राज्य, पन्ना
बुंदेलखंड
२२—८—३१

—अवध उपाध्याय

निवेदन

सुप्रसिद्ध समालोचक श्रीयुत पं० अवध उपाध्याय का, आज हिंदी-संसार को परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाना ही समझा जायगा। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा पर सभी मुग्ध हैं। आप जैसे गणित के विद्वान् हैं, उसी तरह दर्शन और समालोचना के भी। इधर आपने कथा-साहित्य में भी प्रवेश किया है, और इस क्षेत्र में भी आप प्रसिद्धि की ओर विशेष रूप से प्रधावित होते हुए दीख रहे हैं। आपकी सुरुचि-संपन्न, सरस-सुमधुर रचनाएँ कुछ तो सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में समादर पा चुकी हैं, कुछ अप्रकाशित हैं और कुछ उनके कल्पना-जगत् में अट्टहास कर उनमें गुदगुदी पैदा कर रही हैं। जो हो, कल्पना-जगत् की रचनाएँ तो भविष्य को ही आनंद देंगी। हाँ, उन अप्रकाशित रचनाओं में से कुछ—केवल हास्य-रसात्मक बीस कथाओं का संग्रह—आज 'हास्य-सरोवर' के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है, जिसे हिंदी-जगत् के सामने उपस्थित करने में हमें अपार आनंद है।

हास्य-रसात्मक साहित्य का, हिंदी में, अभी एक प्रकार से अभाव ही है। कारण है, हास्य-रसात्मक साहित्य के लिये क़लम उठाना साधारण मस्तिष्क-लेखक का काम नहीं। इसके लिये प्रतिभा-संपन्न हास्य-प्रिय कलाकार चाहिए। इस संकीर्ण पथ से बहुत ही कम लेखक गुज़र सकते हैं। प्रसन्नता की बात है कि इस कमी की पूर्ति में श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव, पं० बदरीनाथ भट्ट, 'विजयानंद दुबे जी', श्रीयुत अन्नपूर्णानंद और कतिपय हिंदी के यशस्वी लेखक लगे हैं, जिनसे आशा बँधती है कि आगे चलकर इस साहित्य को काफ़ी सफलता मिलेगी। इस हास्य-रस के संकीर्ण पथ पर 'हास्य-सरोवर' का संबल लेकर मान्य पंडितजी भी मुस्किराते हुए दीख पड़ रहे हैं। यह हिंदी के लिये परम गौरव की बात है।

प्रस्तुत रचना के गुण-दोष का विवेचन तो हिंदी-संसार ही करेगा; हाँ इसके संबंध में यदि हम अपनी ओर से कुछ कहना चाहें, तो निस्संकोच कह सकते हैं कि पंडितजी ने इसमें आशा से अधिक सफलता पाई है, और आगे चलकर हिंदी-जगत् इनमें बलवती आशा रख सकता है कि आपसे हास्य-रसात्मक साहित्य का सुंदर विकास हुए बिना न रहेगा। हाँ, आपकी इस ओर प्रवृत्ति और उमंग चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक बड़ी शीघ्रता में निकल रही है। इसी से संभव है। असावधानता-वश, कुछ त्रुटियाँ रह गई हों। इन त्रुटियों का सारा कलंक हमारे सिर है और इसमें की ख़ूबियों

का यश पंडित जी को। आशा और विश्वास है, हिंदी हितैषी सज्जन इस पुस्तक का यथोचित आदर कर पं० उपाध्यायजी का सम्मान वर्द्धन करेंगे। इति।

विजया दशमी, ८८ } —प्रकाशक

गल्प-सूची

विषय	पृष्ठ
१—मालिक और नौकर में झगड़ा	१
२—चंडाल-चौकड़ी	८
३—लो, अब तो तीसरा दर्जा हो गया! ...	२७
४—डॉक्टर ग्रम्मार साहब का हिंदी-ज्ञान	३०
५—कविजी महाराज	३३
६—मौलवी साहब का चेला	४३
७—विचित्र कथा	४६
८—लड़का या लड़की?	५६
९—सुर्ख़ और मूर्ख में क्या अंतर है?	७४
१०—महारानी विक्टोरिया और कारलाइल ...	७७
११—आप रेल में तीसरे दर्जे में क्यों चढ़ते हैं? ...	८०
१२—इँगलैंड का प्रिंसिपल	८२
१३—बैल की मेम	८४
१४—मिस्टर गोल्डस्मिथ	८६
१५—फ़ाक़ेमस्त	८८

विषय पृष्ठ

१६—गदहे की शिकायत ९०

१७—धोबी का गदहा बेपता ९३

१८—आपका कोट मेरी टोपी खोजने गया है ... १००

१९—मुंसिफ़ साहब और वकील १०३

२०—सुंदरी के पीछे १०६

(१) मालिक और नौकर में झगड़ा

उटकमंड-साहब पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय में दर्शन के अध्यापक थे । इनका लगभग सब समय दर्शन के पठन-पाठन में ही बीतता था । यह अपने शरीर की भी चिंता नहीं करते थे, इसीलिये देखने में बहुत भद्दे लगते थे । गोस्वामी तुलसीदासजी की कुछ चौपाइयाँ इनके वर्णन में अधिक सहायता दे सकती हैं; क्योंकि गोस्वामीजी ने राक्षसों का भी वर्णन किया है । परंतु इनका हृदय बड़ा कोमल था, और यह बहुत ही अधिक दयालु और सज्जन थे ।

इनकी शादी भी कभी हुई थी, और दो-एक बच्चे भी निकल आए थे, परंतु यह उनकी कुछ भी खबर नहीं लेते थे, और जब वे बीमार पड़ते थे, तो यह उनका अच्छा प्रबंध नहीं कर पाते थे; क्योंकि इन्हें पढ़ने से फ़ुरसत ही नहीं मिलती थी । पहले इनकी स्त्री बीमार पड़ी, और फिर इस संसार से चल बसी । इसके बाद एक-एक करके इनके बच्चे भी मा से भेंट करने चले गए ।

अब इन्हें एक नौकर रखना आवश्यक हो गया। कई नौकर आए और चले गए। ऐसे नीरस आदमी के यहाँ कोई नौकर रहना ही नहीं चाहता था। अंत में उन्हें एक ऐसा नौकर मिल गया, जिसने उनके यहाँ सदा के लिये रहने का वादा किया। परंतु दो दिन के बाद उसने भी नौकरी से इस्तीफ़ा दाखिल किया। उसने कहा—"महाशय! आप अपनी पुस्तकों के पढ़ने में लगे रहते हैं, और भोजन करने ठीक समय पर नहीं उठते। कल मैं बारह बजे रात तक जागता रहा, परंतु आप न आए, न आए। कल मुझे दो बजे रात तक जागना पड़ा था। अगर मैं इसी प्रकार जागता रहा, तो जरूर बीमार पड़ जाऊँगा। ऐसी नौकरी करने से बाज़ आया।"

तब पटकमंड-साहब ने उससे कहा—"तुम घबराओ मत। मैं बहुत जल्द भोजन कर लिया करूँगा। तुम नौकरी मत छोड़ो। मैं तुम्हें एक रुपया अधिक महीना दिया करूँगा।"

साहब की बात सुनकर नौकर रह गया, परंतु रात को फिर वही बात। उसने दो-एक दिन और देखा, परंतु साहब की जिंदगी-भर की आदत कहाँ जा सकती थी। उन्होंने फिर ठीक समय पर भोजन नहीं किया, और आज फिर वह दो बजे के पहले नहीं सो सका। परंतु उस दिन वह ग़म खा गया, जब कई दिन तक और लगातार इसी प्रकार होता रहा, तब

नौकर ने समझ लिया कि उटकमंड-साहब अपनी आदत नहीं छोड़ सकते। उसने फिर इस्तीफा दाखिल कर दिया। साहब ने उसे आज फिर समझाया कि तुम जिस समय सूचना दोगे, मैं उसी समय भोजन करने के लिये तैयार हो जाऊँगा। नौकर फिर रह गया। परंतु उसने इसका जिक्र मनमोहन से भी किया। मनमोहन ने भी कहा—"तुम कहीं मत जाओ। साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। मैं भी उन्हें समझा दूँगा।" वास्तव में मनमोहन उटकमंड-साहब का शिष्य था, उन्हें बहुत मानता था, और प्रायः उनकी देख-रेख किया करता था। साहब की आवश्यकताओं की पूर्ति भी किया करता था, और उन्हें आदर की दृष्टि से देखता था।

दो-एक दिन और इसी तरह चला। तीन-चार दिन के बाद जब उटकमंड-साहब भोजन करने बैठे, तब नौकर ने कहा—"कल मैं अवश्य यहाँ से चला जाऊँगा; क्योंकि आप कभी सबेरे भोजन नहीं कर सकते।" उटकमंड-साहब ने उससे कहा—"तुम वास्तव में मुझे उचित रीति से सूचना नहीं देते। मुझे पता ही नहीं चलता कि कब भोजन तैयार हुआ। कल से जब भोजन तैयार हो जाय, तो मेरे पास चले आना, मेज पर ज़ोर से अपना हाथ पटक देना, तब मैं समझ जाऊँगा कि भोजन तैयार है, और फौरन् भोजन करने के लिये उठ पड़ूँगा।"

दूसरे दिन लगभग आठ बजे संध्या समय भोजन तैयार हो गया, और नौकर ने जाकर मेज पर बड़े जोर से हाथ पटका, परंतु इस प्रकार भी वह साहब का ध्यान नहीं आकर्षित कर सका। उसने कई बार और मेज पर जोर-जोर से अपना हाथ पटका, परंतु साहब पुस्तक के पढ़ने में लीन हो गए थे। उन्होंने कुछ भी नहीं सुना, वह पढ़ते ही चले गए।

अंत में उसने इतने जोर से मेज पर अपना हाथ मारा कि वह दीपक, जिसकी सहायता से साहब पढ़ रहे थे, पृथ्वी पर गिर पड़ा। अब साहब उठे, और भोजन करने चले गए। उस दिन फिर नौकर ने शिकायत की कि आप इस प्रकार भी मेरी बात नहीं सुनते। अब मैं क्या करूँ? पहले तो साहब कुछ घबराए, परंतु अंत में उन्होंने कहा—"अच्छा, कल से तुम मेरी वह पुस्तक उठा लिया करो, जिसे मैं उस समय पढ़ता होऊँ। बस, तब मैं समझ जाऊँगा कि भोजन तैयार है, और मैं फौरन् ही भोजन करने के लिये उठ जाया करूँगा।" दूसरे दिन नौकर ने जाकर फौरन् किताब खींच ली और साहब खाने चले गए। नौकर ने अपने मन में कहा कि अब अच्छा उपाय हाथ लग गया है। अब प्रतिदिन साहब को उचित समय पर अवश्य ही उठ जाना पड़ेगा। परंतु जब वह दूसरे दिन उनकी पुस्तक छीनने गया, तो साहब ने बड़े जोर से पुस्तक

पकड़ ली, उसे छीनने नहीं दिया, और फिर पढ़ने लगे। पहले तो नौकर घबराया, परंतु फिर उसने धैर्य से काम लिया, और लगभग आध घंटा और ठहर गया। इसके बाद चोर की तरह बहुत धीरे-धीरे साहब के पास चला गया। साहब तो अपने पढ़ने में मस्त थे, उन्होंने नौकर को देखा भी नहीं। नौकर लगा रहा, जल्दी से किताब को पकड़ा, और उसे लेकर बाहर भाग गया। पहले तो साहब ने समझा कि पुस्तक कहीं उड़ गई, और वास्तव में उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ, परंतु फिर जब नौकर ने उन्हें पुस्तक दूर से दिखला दी, तब वह भोजन करने चले गए।

इसी प्रकार नौकर और मालिक में रोज़ अब पुस्तक की छीना-झपटी हुआ करती थी, और दो-एक दाव-पेच के बाद साहब भोजन करने के लिये विवश हो जाया करते थे। एक दिन साहब का मन पढ़ने में बहुत लग गया। इसलिये उन्होंने पुस्तक छीनने ही नहीं दी, क्योंकि आज वह पुस्तक को दोनो हाथ से ज़ोर से पकड़कर पढ़ रहे थे, और ज्यों ही नौकर पुस्तक पकड़ता था, त्यों ही वह भी ज़ोर से पुस्तक पकड़ लेते थे और कहने लगते थे—"बस-बस, बस! पाँच मिनट और पढ़ लेने दो।" यही क्रम बारह बजे रात तक जारी रहा, और नौकर हैरान हो गया। अंत में नौकर ने एक दियासलाई

जलाई, और साहब से कहा कि अगर आप इसी समय भोजन करने के लिये न उठेंगे, तो मैं आपकी इस पुस्तक में दियासलाई लगा दूँगा। इस डर से आज तो साहब उठ गए, परंतु नौकर ने समझ लिया कि आज तक जिस उपाय से मैं काम लेता था, वह वास्तव में अमोघ अस्त्र नहीं है।

दूसरे दिन भी साहब का पढ़ने में बहुत मन लग गया। इधर नौकर ने अपने मन में तय किया कि आज साहब को पढ़ने ही नहीं दूँगा, और ज्यों ही भोजन तैयार होगा, त्यों ही उनको पुस्तक छीन लूँगा, और जब तक भोजन करने न उठेंगे, तब तक उनका दम ही न छोड़ूँगा। आठ बजे का समय था और रात थी अँधेरी। नौकर ने जाकर साहब की पुस्तक पकड़ ली। साहब ने भी पुस्तक को ज़ोर से पकड़ लिया, और अपनी ओर खींचा। नौकर ने भी उसे अपनी ओर खींचा। इस खींचा-खींची के समय साहब के यहाँ मन-मोहन आया, उसने दूर से साहब को एक आदमी से इस प्रकार लड़ते देखा। उसके रोम-रोम सजग हो गए, उसने समझा कि साहब को कोई मार रहा है। उसके हृदय में गुरु-भक्ति उमड़ आई, वह ज़ोर से दौड़ा, और नौकर के सिर में एक सोंटा बड़े ज़ोर से मारा। नौकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। साहब घबरा गए, उन्होंने समझा कि चोर ने उनके ऊपर

हमला कर दिया है, उन्होंने जोर से उसी पुस्तक को मनमोहन के ऊपर पटक दिया, और फिर जोर से उसे पकड़ लिया। थोड़ी देर के बाद उन्हें अपनी भूल मालूम हुई, मनमोहन को भी नौकर पर डंडा चलाने का अफ़सोस हुआ। अंत में उन लोगों में परस्पर समझौता हुआ। उटकमंड-साहब जब प्रातःकाल उठे, तो नौकर का कुछ भी पता नहीं था। वह रात ही को भाग गया था।

---

(२) चंडाल-चौकड़ी

पत्र नं० १

श्रीमान्‌जी !

बहुत घबराकर तथा व्याकुल होकर आज मैं आपकी सेवा में यह पत्र लिख रही हूँ। मैं नहीं जानती कि मेरी जीवन-नौका किधर बह रही है, और किधर लगेगी। परंतु यह धारा अब इतनी प्रबल हो उठी है कि मैं आपके पास बिना लिखे नहीं रह सकती। मुझे इस बात का भी पता नहीं है कि यह पत्र आपको मिलेगा या नहीं। इसीलिये मैं इस पत्र में अपने संबंध में विशेष रूप से नहीं लिख रही हूँ। अब मैं अपने को सँभाल भी नहीं सकती। क्या मैं आपका पता ठीक लिख रही हूँ ? मैंने आपको कल-*कत्ते-कांग्रेस में, स्वयंसेवक की दशा में, देखा था। उस समय* मैं स्वयंसेविका का काम करती थी। यदि यह पत्र वास्तव में आपको मिल जायगा, तो मैं दूसरे पत्र में अपनी सारी दशा सच-सच लिखूँगी। जल में डूबते हुए मनुष्य के लिये

तिनके का सहारा भी बहुत है। परंतु विलंब होने पर नाव का आना भी व्यर्थ है।

आपकी उन्मादिनी—

पता—

c/o मिसेज़ कृष्णलाल

हज़रतगंज, लखनऊ*

* यह मेरे एक मित्र का पता है।

पत्र नं० २

श्रीमतीजी !

आपका पत्र आया, और सब बातें मालूम हुईं। हाँ, आपने जो मेरा पता लिखा है, वह ठीक है। मैंने भी आपको कांग्रेस में एक स्वयंसेविका की हैसियत में देखा था, और आपने मेरा ध्यान कई बार आकर्षित किया था। वास्तव में मैं उसी क्षण से आपको प्यार करने लगा हूँ। आपने लिखा है कि दिल सँभाले नहीं सँभलता, मेरी भी ठीक वही हालत है। अब आपके पत्र से मुझे बड़ा संतोष हुआ। परंतु केवल आपके पत्र से ही मुझे पूर्ण रूप से संतोष नहीं हुआ, मैं आपकी उस सुंदर और माधुरी मूर्ति का दर्शन करना चाहता हूँ। आप कृपा करके उसी पते से फिर अवश्य लिखें। एक बात और, यह मिसेज़ कृष्णलाल कौन हैं ? इनके द्वारा पत्र

लिखने में कुछ हर्ज तो नहीं है ? इसी संदेह के कारण मैं अच्छी तरह से दिल खोलकर नहीं लिख रहा हूँ ।

दर्शनाभिलाषी—

आपका वही

पत्र नं० २

प्रिय रामचंद्रजी !

क्या वास्तव में मुझे आपका पत्र मिल गया है ? मैंने तो अथाह समुद्र में एक कंकड़ी फेंकी थी, मुझे क्या आशा थी कि मेरा निशाना ठीक बैठेगा। मैंने स्वयंसेवकों को आपको रामचंद्र कहकर पुकारते हुए सुना था, और पता लगाने से इतना भी समझ गई थी कि आप बनारस के रहनेवाले हैं; परंतु मैं निश्चित रूप से यह नहीं जानती थी कि आप कॉलेज में पढ़ते भी हैं। वास्तव में मैंने आपका पता अंदाज़ से ही लिखा था। परंतु अब देखती हूँ कि प्रेम ने मुझे उचित तथा ठीक ही मार्ग बतलाया था। लोग कहा करते हैं कि प्रेम अंधा होता है, अब मुझे मालूम हुआ कि उनका यह कथन सर्वथा मिथ्या है, असंभव है, ग़लत है। पत्र छोड़ने के बाद मैं बहुत घबरा रही थी और अपने को धिक्कार भी रही थी; क्योंकि प्रेम के प्रभाव को मैं भली भाँति नहीं जानती थी। अब मुझे पता चला कि प्रेम में अद्भुत शक्ति

हैं, वह असंभव को भी संभव कर सकता है। इतना तो हुआ; परंतु प्यारे ! मुझे ऐसा मालूम होता है कि आपके भव्य, विशाल तथा सुंदर हृदय में मुझे अभी तक स्थान नहीं मिला है। इसमें संदेह नहीं कि आपने अपने पत्र में मेरे ऊपर दया की है, परंतु आपके पत्र से प्रेम की गंध नहीं आती। आपने मेरे साथ सहानुभूति की है, मुझे सांत्वना दी है, परंतु प्रेम की वर्षा नहीं की है; प्यारे ! मैं प्रेम की भूखी हूँ, पवित्र प्रेम की प्यासी हूँ, मैं प्रेम की अविरल धारा में सदा बहना चाहती हूँ। प्रियवर ! शीघ्र पत्र लिखो, और उसमें साफ़-साफ़ लिखो कि तुम मुझे प्यार करते हो। आपके पत्र में तो उस प्रेम की छाया भी नहीं दिखलाई पड़ती, जिसकी मैं भूखी हूँ और जिसके लिये मैं तरस रही हूँ। प्रियतम ! तुमने अपने पत्र में अपना नाम तक नहीं लिखा ! क्या मेरे लिये यह दुःख की बात नहीं है कि मैं उस देवता का ठीक-ठीक नाम भी न जानूँ, जिसको मैं आज तक पूजा करती आ रही हूँ। मैंने तो अपना नाम इसलिये नहीं लिखा था कि मुझे इस बात का संदेह था कि कदाचित् पत्र आपके पास तक न पहुँचे। परंतु प्यारे ! मेरे ऊपर अविश्वास करके आप घोर अन्याय कर रहे हैं। इस प्रकार का अविश्वास प्रेम-मार्ग में बड़ा अन्याय है, घोर अत्याचार है और भारी षड्यंत्र है।

मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे ऊपर इस प्रकार अविश्वास न करें, और दिल खोलकर पत्र लिखें। हाँ, एक बात और है। आपका पत्र कृष्णलाल के हाथ में पड़ गया था। वह अपनी स्त्री पर बहुत क्रुद्ध हुए थे, और क्रोध में मेरी अनुपस्थिति में उन्होंने मुझे भी भला-बुरा कहा था, परंतु मिसेज़ कृष्णलाल के बहुत समझाने पर वह कुछ शांत हुए, और अब वह आपके पत्र को खोलकर न देखेंगे। मिसेज़ कृष्णलाल मुझे बहुत चाहती हैं, मैं उनसे कोई बात नहीं छिपाती, और वह भी मुझसे कोई बात गुप्त नहीं रखतीं। अतएव अब आप निःसंकोच रूप से अपने भावों को दूसरे पत्र में लिखिए। अब आपका पत्र मुझे ही सीधा मिला करेगा। अब आप शीघ्र ही पत्र लिखिए, क्योंकि आपके पत्र के बिना चित्त बहुत उदास रहता है। आपके पत्र के आने पर आगे की बात लिखूँगी।

आपकी प्रेमभिखारिणी—

शांता

पत्र नं० ४

प्रिय शांतादेवी !

आपका पत्र मुझे अभी मिला है। न-मालूम पत्र में क्या जादू भरा था। उसे बाँचते-ही-बाँचते हृदय प्रफुल्लित हो गया,

और आनंद की तो कोई सीमा ही नहीं रही। पहले मैंने अपने मन में यह नहीं समझा था कि इस साल कांग्रेस में मेरे जाने का इतना बड़ा आशय था। यदि मैं जानता कि मेरे कांग्रेस में सम्मिलित होने से किसी सुकुमारी के कोमल हृदय पर चोट लगेगी, तो मैं कभी नहीं जाता। यदि मेरे किसी भी बर्ताव से आपके हृदय पर चोट पहुँची, तो मैं यही समझूँगा कि मैं अभागा हूँ। आपने मेरे ऊपर प्रेम की कचहरी में अविश्वास का दावा ठोक दिया है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इसमें मैं विजयी हूँगा। मेरे हृदय में प्रेम-सागर की तरंगें उमड़ रही हैं। शांता ! मैं हृदय के अंतस्तल से तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। परंतु उसके साथ-ही-साथ मैं इतना और लिखना अत्यंत ही अधिक आवश्यक समझता हूँ कि इस नई लगन के कारण मैं घबरा गया हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ। मैं तुम्हारे दर्शनों के बिना भी अब बहुत घबरा और तरस रहा हूँ। उस दिन मैं अपने को धन्य समझूँगा, जिस दिन आपके दर्शन होंगे। क्या यह संभव है ? शांता, इस बार पत्र का उत्तर शीघ्र देना और लिखो, क्या सचमुच तुम मुझे चाहती हो ?

आपका सेवक—

रामचंद्र

पत्र नं० ५

प्रियतम !

आपका दूसरा पत्र मिला, बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मुझे विश्वास होने लगा है कि मेरी जीवन-नौका पार लग जायगी, परंतु प्यारे ! आपके इस पत्र से तो अविश्वास की और भी अधिक तीव्र गंध आ रही है। मेरे प्रेम में व्यापार नहीं है, इसमें तिजारत नहीं, लेन-देन नहीं, यह तो हृदय का अखंड दान है। मैंने अपना हृदय सर्वदा के लिये आपको अर्पण कर दिया, चाहे आप अविश्वास करें अथवा मुझे ठुकरा दें। मैं तो अब आपकी हो चुकी। मैंने अब आपको आत्मसमर्पण कर दिया। प्रेम करना कोई शारीरिक व्यापार नहीं है, यह तो आत्मिक संस्कार है, यह तो दो आत्माओं का पारस्परिक सम्मेलन, उनका आकर्षण और उनका संयोग है। मेरे प्रेम में शारीरिक संबंध के लिये कुछ भी स्थान नहीं है; मेरा प्रेम पवित्र है, वह स्वर्गीय है। मेरे प्रेम में रूप का मोह नहीं, आत्मा का आकर्षण है। हाँ, प्रियतम ! मैं शीघ्र ही उस देवता को अपने पास बुलाऊँगी, जिसकी मैं पूजा करती हूँ। अवश्य और शीघ्र। विशेष दूसरे पत्र में।

आपकी वही—

शांता

पत्र नं० ६

प्रिय बहन शांता !

तुम्हारे अगले दो पत्रों का मैंने उत्तर दे दिया है। परंतु बहन ! मुझे खेद है, मैंने वैसा उत्तर क्यों दिया। वास्तव में उन दिनों मेरे ऊपर एक प्रकार का नशा हो गया था। उसी मादक तान के वशीभूत होकर मैंने न-मालूम क्या-क्या लिख मारा। परंतु आज मैं गंभीर विचार के बाद आपके पास लिख रहा हूँ।

जब से आपका पत्र मिला है, तब से मेरी दशा विचित्र हो गई है, पढ़ने में मन नहीं लगता और सदा आपका ध्यान लगा रहता है और सौ प्रयत्न करने पर भी मेरा मन ठिकाने नहीं आता। परीक्षा के दिन बहुत निकट हैं, मैं पढ़ने का प्रयत्न करता हूँ, तथापि मेरी समझ में कुछ नहीं आता। यदि मेरी दशा ऐसी ही रही, तो परीक्षोत्तीर्ण होना भी कठिन होगा। बहन शांता, बुरा मत मानना, क्योंकि मुझे भी इन बातों के लिखने में बड़ा कष्ट हो रहा है, दिल दहल जाता है, और हृदय अधीर हो जाता है, तथापि मेरी सब भावनाएँ अब कठोर कर्तव्य के सामने सिर झुका ही देती हैं, और मुझे लिखना पड़ता है कि बहन शांता ! मुझे भूल जाओ, और अपने मन में ऐसा समझ लो कि हम लोगों की कभी

देखा-देखी भी नहीं हुई थी, और न हम लोगों में कभी पत्र-व्यवहार ही हुआ था। बहन! तुम्हीं कहो, किसी बालक को किसी अविवाहित बालिका के यहाँ पत्र लिखने का क्या अधिकार है? तुम एक कुमारी कन्या हो। मोह तथा प्रेम के जाल में फँसना न तुम्हारे लिये अच्छा है और न मेरे लिये। मेरी समझ में यह बात भली भाँति आ गई है कि ऐसा करने में ही हम लोगों का परम कल्याण है। तुम्हारा यह कर्तव्य नहीं, कि तुम किसी आदमी की ओर प्रेम-भरी निगाह डालो। तुम्हारे प्रेम में मैं पहले पागल हो गया था। इसीलिये, मैं अपने कर्तव्य को भली भाँति नहीं समझ सका। आज से तुम मेरी बहन हो, मैं तुम्हारा भाई हूँ। तुम मेरी 'प्रिय शांता' नहीं, 'बहन शांता' हो। मैं तुम्हारा 'प्रियतम' नहीं, 'भाई' हूँ। बहन, मेरे पहले पत्रों पर कुछ भी ध्यान मत देना, क्योंकि वे एक भूले हुए आदमी के लिखे हुए हैं। उन्हें फाड़कर फेंक देना। मैंने भी तुम्हारे पत्रों को फाड़कर फेंक दिया है। यदि इस जीवन में हम लोग कभी मिले, तो भाई-बहन की तरह ही मिलेंगे। रामचंद्र स्त्री-मात्र को अपनी माता और बहन समझता है, और आज उस ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद देता है, जिसने उसे आज गड्ढे में गिरने से बचा लिया। बहन शांता, इस अखंड तथा अनुल्लंघनीय सत्य को सर्वदा

स्मरण रक्खो कि यह भोग-भूमि नहीं, कर्म-क्षेत्र है, और यहाँ पर कर्तव्य के सामने सिर झुकाना चाहिए, भाव के सामने नहीं।

तुम्हारा भाई—

रामचंद्र

पत्र नं० ७

प्रियतम !

आपका पत्र मिला, बड़ा आश्चर्य हुआ। आपने प्रेम की जो दुर्गति की है, वह वास्तव में आश्चर्य-जनक है। आपने प्रेम के गूढ़ आशय को नहीं समझा है, और उसे मोह के मैदान में घसीट-कर उसकी मिट्टी पलीद की है। प्रेम अस्थायी नहीं, चिरस्थायी, अपूर्ण नहीं, पूर्ण, वाणिज्य नहीं, अखंड दान है। प्रेम का अखंड दान फिर वापस नहीं लिया जा सकता। स्त्रियों के प्रेम की चाल शतरंज के पैदल की तरह आगे बढ़कर पीछे हटना नहीं जानती। इसमें शारीरिक संबंध नहीं, आत्मिक संयोग होता है। आपने मुझे मेरा कर्तव्य सुझाया है, इसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। क्या आप समझते हैं कि बालिका को कभी किसी से प्रेम करना ही नहीं चाहिए ? बालिका तो वास्तव में प्रेम करने के लिये ही पैदा की गई है, और यदि उसने किसी से प्रेम नहीं किया, तो उसका जीवन ही निरर्थक समझना चाहिए। हाँ, इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि उसे एक ही व्यक्ति से जीवन-पर्यंत प्रेम करना चाहिए। यदि वह कभी किसी को प्रेम-भरी निगाह से देख ले, तो

उसे सदा इसी प्रकार प्रेम-पूर्वक देखते रहना चाहिए। प्यारे! मुझे खेद है कि आपने मेरे ऊपर पहले से भी अधिक अविश्वास किया, और मुझे एक ऐसी बालिका समझ लिया, जो गली-गली अपना प्रेम बाँटती फिरती है। आपने मेरी दशा का कुछ भी विचार नहीं किया, आपने मेरी व्याकुलता तथा विह्वलता के संबंध में कुछ भी विचार नहीं किया, और मेरे चरित्र के संबंध में संदेह करना प्रारंभ कर दिया। आपने मेरे उस प्रेम के बारे में कुछ सोचा ही नहीं, जिसने मुझसे स्त्रियोचित लज्जा का उल्लंघन करा दिया, और आपके पास पत्र लिखने के लिये विवश किया। मैंने तो अपने को आप पर निछावर कर दिया, मैंने तो स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ रत्न-हृदय आपको अर्पण कर दिया; परंतु आप अब मुझे ठुकरा रहे हैं। आप मुझे कर्तव्य का पाठ पढ़ा रहे हैं, और उस निर्दयता का स्पष्ट रूप से परिचय दे रहे हैं, जिसके लिये पुरुष-जाति सर्वदा से प्रसिद्ध है। इस बात को आप मत भूलिए कि शांता प्रेम करना जानती है, और उसका दमन करना भी जानती है।

हाँ, मैं इस बात को मानती हूँ कि संसार भोग-भूमि नहीं, कर्म-क्षेत्र है। मैं कर्तव्य के सामने भी सिर झुकाने को तैयार हूँ, परंतु मैं इस बात को भी मानती हूँ, और इसे अपना परम कर्तव्य समझती हूँ कि आपको जीवन-भर इसी प्रकार प्यार करती रहूँ। मेरा प्रेम पुरुषों का प्रेम नहीं, स्त्रियों का प्रेम है। आपने अपने पत्र में मेरा जब अपमान और तिरस्कार किया है। परंतु मेरा पूर्ण विश्वास है

कि वह अपमान और तिरस्कार प्रेम की नदी में पानी की तरह बह जायँगे। आपकी आज्ञा है कि मैं अब आपसे कोई संबंध न रक्खूँ, यह भी शिरोधार्य है। मैं आपके पास पत्र न लिखूँगी, और न कोई बाहरी संबंध ही रक्खूँगी; परंतु हृदयेश्वर! हृदय का हृदय से और आत्मा का आत्मा से जो नाता लग जाता है, वह कभी नहीं टूट सकता। जिस सुंदर तथा पवित्र मूर्ति की स्थापना मैंने अपने हृदय-मंदिर में कर ली है, उसे भला कैसे बाहर निकाल सकती हूँ! आपने जो मेरा तिरस्कार किया है, उसे प्रेम-पूर्वक सहूँगी। ब्रह्मा ने जहाँ पुरुषों का हृदय इतना कठोर बनाया है, वहाँ स्त्रियों में सहने की शक्ति भी खूब दी है। अच्छा, अंत में इतना और लिखना आवश्यक समझती हूँ कि आपकी आज्ञा के अनुसार यही मेरा अंतिम पत्र है। इसके साथ-ही-साथ मेरी और एक पहली प्रार्थना है और कदाचित् यही अंतिम प्रार्थना भी हो। वह यह है कि आप कृपा करके अपना एक चित्र भेज दीजिए। बस! मुझे आपसे और कोई प्रार्थना नहीं करनी है। आशा करती हूँ कि आप मेरी इस प्रार्थना को अस्वीकार करने की कठोरता न करेंगे। अंत में आपसे इतनी और प्रार्थना है कि यदि प्रेम के आवेश में कुछ भूलें हो गई हों, तो कृपया मुझे एक अबोध बालिका जानकर क्षमा कीजिएगा। मेरी प्रेम-बेलि मुरझा गई है, आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी है, श्रीचरणों में सादर साष्टांग प्रणाम।

आपकी तिरस्कृता—शांता

पत्र नं० ८

प्रेम-मूर्ति शांता !

मध्याह्न का समय था, वायु-मंडल अग्नि-वर्षा कर रहा था, बड़ी विकट लुएँ चल रही थीं, और शरीर झुलसा जाता था। इसी समय तुम्हारा पत्र मिला, और हृदय को शीतल कर दिया। मैं पहले इस बात को नहीं जानता था कि प्रेम में शीतल करने की इतनी शक्ति होती है। मुझे शांति प्रदान करके तुमने अपने नाम को आज सार्थक कर दिया है। वास्तव में तुम प्रेममय हो। अब मुझे पता चला कि तुम्हारा प्रेम क्षणिक नहीं, चिरस्थायी है। तुम्हारा सौंदर्य पवित्र तथा स्थिर है। तुम्हारा प्रेम अलौकिक और ध्रुव तारे के समान निश्चल तथा निर्मल है। तुम्हारे प्रेम को पाकर मैं सौभाग्य-शाली हो गया। शांता ! तुम्हारा प्रेम मुझे सहर्ष स्वीकार है। यदि मेरे पहले पत्र ने तुम्हारे कोमल हृदय पर चोट की हो, तो मुझे हृदय से क्षमा कर देना। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारा कोमल हृदय अवश्य मुझे क्षमा कर देगा। मेरा प्रथम पत्र तुम्हारे प्रेम के परखने के लिये कसौटी था। उस पर तुम खरी उतरीं। मैं जानना चाहता था कि तुम्हारा प्रेम उन्माद-मात्र है, अथवा उपासना का मर्म भी समझता है। तुमने मेरा फ़ोटो माँगा है प्रियतमे ! मैं तुम्हें अपना फ़ोटो नहीं भेज सकता। यदि कहो तो सजीव-चित्र देने को तैयार हूँ। अभी कहो, सेवा में हाज़िर हो जाऊँ। मुझे अब अपना पूरा परिचय दो, और साफ़-

साफ़ लिखो कि तुम्हारे दर्शन कब होंगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि तुम रामचंद्र को जितना कठोर समझती हो, उतना वह नहीं है। रामचंद्र प्रेम की प्रतिमा की अवहेलना नहीं कर सकता, वह उसकी पूजा करेगा। आहा! मैं वास्तव में बड़ा सौभाग्यशाली हूँ, क्योंकि मुझे संसार के दो सर्व-श्रेष्ठ रत्न--प्रेम और सौंदर्य--अब मिल गए। ये वस्तु सबके भाग्य में नहीं होते। तुम्हारा पवित्र हृदय अब मेरे दरिद्र-जीवन की सारी संपत्ति होगा। शीघ्र लिखो, तुम्हारे दर्शन कब और कहाँ होंगे। अब मैं अधीर हो उठा हूँ, तुम्हें बिना देखे अब मैं जीवित नहीं रह सकता। मेरा हृदय अब भावी मिलन के उल्लास से नाच उठा है। सुनो, मैं तुम्हें इस की एक बात सुनाता हूँ। तुम्हारे पत्र पाने के बाद मैं अपने को सँभाल नहीं सका, मैं तुम्हारे दर्शनों के लिये चल पड़ा और हजरतगंज पहुँच गया। इतना ही नहीं, मैंने कृष्णलाल के घर का भी पता लगा लिया; परंतु फिर भी तुम्हारा ठीक पता नहीं चला। जल्द लिखो, तुम कहाँ रहती हो, तुम्हारे दर्शन कब होंगे, कैसे होंगे। अब मैं अधीर हो गया हूँ।

तुम्हारे प्रेम ने मेरी हृदय-वीणा के तारों को झनझना दिया है, मैं विह्वल हो गया हूँ। आशा है, तुरंत उत्तर दोगी। पत्र न मिलने के पहले के दिन वर्षों की तरह बीतेंगे। शेष मिलने पर।

तुम्हारा ही--

रामचंद्र

पत्र नं० ६

हृदयेश्वर !

आपका कृपा-पत्र मिला। अनेक हार्दिक धन्यवाद देना तो एक प्रकार से शिष्टाचार की क्रूरता होगी। आपके इस पत्र को मैंने कई बार पढ़ा है। इस पत्र ने वास्तव में मुझे बड़ा सुख दिया है और इसने मेरे भाग्य का फ़ैसला कर दिया है। आपने लिखा है कि आप मेरी परीक्षा कर रहे थे। प्रियवर! आपके लिये तो वह एक विनोद-मात्र था, परंतु मेरे लिये तो वह जीवन और मरण का प्रश्न था। परमेश्वर की सृष्टि वास्तव में विचित्र है! जिस बात में एक आदमी की हँसी है, जिसमें एक का खेल है, उसी में दूसरे के जीवन की समस्या है। आप तो प्रेम की कसौटी तैयार कर रहे थे, यहाँ प्राणों की बाजी लगी थी। आप जिस प्रेम को थाहना चाहते थे, वह वास्तव में अथाह है। इसमें खिलवाड़ करने से डूब जाने का डर है। भाषा भला मेरे प्रेम का क्या वर्णन कर सकती है! भाषा तो मेरे भावों की अधिकता तथा गहराई को और ढक देती है, उसे प्रज्वलित नहीं कर सकती, उसका वर्णन नहीं कर सकती। मेरा प्रेम पानी का बुलबुला नहीं है, जो क्षण-भर में ख़तम हो जायगा।

अंत में कृपा करके एक बात बतलाइए, और इस धृष्टता के लिये क्षमा कीजिएगा। क्या आपका विवाह तो नहीं हुआ है? इस पत्र में भी मैं अपना सब परिचय नहीं दे रही हूँ। परंतु आपका पत्र आने पर इस बार मैं अपना पूरा परिचय अवश्य दूँगी। मुझे

यह बात जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप एक दिन रकाब-गंज भी आए थे। प्यारे! घबराओ मत। शीघ्रता करने से काम बिगड़ सकता है। शांता सब काम शांति-पूर्वक करना चाहती है। आप भी उसी शांति का अवलंबन कीजिए। बहुत ही शीघ्र मैं आपको बुलाऊँगी, आपके शुभ दर्शनों से अपने को पवित्र करूँगी, आपका आदर-सत्कार करूँगी और अपने व्यथित हृदय को शांत करूँगी और उस देवता की दृष्टि तथा शुभागमन से अपने को धन्य समझूँगी। बस! इस बार इतना ही, विशेष मिलने पर। आपके श्रीचरणों में सादर प्रणाम स्वीकार हो।

आप ही की—

शांता

पत्र नं० १०

प्रियतमे!

तुम्हारे पत्र ने मेरे हृदय के सब तारों को बजा दिया। हाँ, पहले मैंने तुम्हारे प्रेम के संबंध में समझने में ग़लती की थी। अभी मैं अविवाहित हूँ। मेरा विचार है कि विश्वविद्यालय की सब परीक्षाएँ पास कर लेने के बाद ही मैं अपना विवाह करूँ। पूर्ण आशा है, तुम भी मेरे इस विचार से सहमत होगी। पूर्ण परिचय शीघ्र दो, शीघ्र दो—शीघ्र दो और मझधार में डूबते हुए आदमी को जल्दी उबार लो।

तुम्हारा ही—

रामचंद्र

पत्र नं० ११

हृदयेश्वर !

पत्र के लिये कोटिशः धन्यवाद। मेरा हृदय पत्र पढ़कर आनंद से नाच उठा। जिस बात को जानने के लिये मैं लालायित थी, जिसके लिये मैं तरस रही थी, उसी बात को जानकर मेरा हृदय क्यों न आनंद-विभोर हो जाय ? आपके पत्र ने आज जो शांति मुझे दी, उसका वर्णन करना त्रैलोक्य की भाषा के लिये असंभव है। बेचारी लेखनी मेरे हृदय के भावों के दिखलाने में सर्वथा असमर्थ है। मेरे हृदय में इस समय पचासों बातें आती हैं, और फिर विलीन हो जाती हैं।

भावी मिलन की संभावना से मेरा मन आनंद के मारे पागल हो रहा है। अच्छा, तो मैं अपना पूरा परिचय इस पत्र में भी नहीं दे रही हूँ; क्योंकि अब मैं पत्रों की सहायता से आपसे बातचीत नहीं करना चाहती। अब मैं आपको अपने पास बुलाऊँगी, और स्वयं अपना परिचय आपको दूँगी। इसी आगामी रविवार को घूमने के लिये सब लोग बाहर जानेवाले हैं। ये लोग प्रातःकाल ही यहाँ से चले जायँगे और रात को लगभग दस बजे लौटेंगे। मैं कोई बहाना ढूँढ़ लूँगी और इन लोगों के साथ नहीं जाऊँगी। अतएव इसी रविवार को मैं आपका दर्शन कर सकूँगी; क्योंकि उस समय हमारे घर और कोई न होगा। मेरा घर हजरतगंज में है। कृष्णलाल के मकान तक तो आप उस दिन आए ही थे। उसी सड़क पर मेरा भी मकान है। कृष्णलाल के मकान के दो घर के बाद उस पर 'शांति-कुटीर'

लिखा है। आप कृपा करके १३ एप्रिल रविवार को वहीं लगभग छः बजे पहुँच जाइएगा। पिताजी ठीक छः बजे घर से अन्य सब लोगों के साथ चले जायँगे और 'शांति-कुटीर' के दरवाजे पर मोहन-नामक एक लड़का पहरा देने लगेगा। आप दूर से ही यह सब देखिएगा। जब आप देखिएगा कि सब लोग चले गए, तो शीघ्र ही चले आइएगा, और उस लड़के का नाम पूछिएगा। जब वह कह दे कि उसका नाम मोहन है, तब आप शीघ्र ही ऊपर चले आइएगा, और उससे किसी प्रकार की बातचीत मत कीजिएगा। ऊपर मैं आप-को उत्सुक नेत्रों से प्रतीक्षा करती रहूँगी, और आपको देखते ही मैं अपनी सब साध पूरी करूँगी। उसके बाद संसार की कोई भी शक्ति मुझे और आपको अलग नहीं कर सकेगी, और तब आप शांता के प्रेम के महत्त्व को समझ सकेंगे। उस समय आपको शांता का तिरस्कार करना कठिन ही नहीं, असंभव भी हो जायगा। प्यारे! मैं अपने भावी मिलन के सुख से अभी से पागल हो रही हूँ। वास्तव में मैं उड़कर आपसे मिलना चाहती हूँ। इसे पत्र नहीं, मेरा हृदय समझिएगा। अंत में एक बार फिर स्मरण दिलाती हूँ—

१३ एप्रिल रविवार प्रातःकाल छः बजे हजरतगंज में कृष्ण के मकान के दो मकान बाद 'शांति-कुटीर' में मोहन बस! अब नहीं लिखा जाता। देखूँ, आपने अपने पत्रों में जो प्रेम दर्शाया, वह शब्दों तक ही परिमित है अथवा वह वास्तव में हृदय का चित्र है। श्रीचरणों में प्रणाम स्वीकार हो।

आपकी ही—शांता

पत्र नं० १२

प्रियवर कृष्णलाल !

आपको तो मालूम ही है कि किस तरह से हम लोगों ने रामचंद्र को बेवकूफ बनाया था, परंतु खेद है कि अंतिम दृश्य के समय आप वहाँ नहीं थे। वास्तव में वही तो असली और मजेदार बात थी, जैसा कि हम लोगों ने उसके यहाँ बनाकर लिख दिया था। रामचंद्र ठीक छः बजे रविवार ता० १३ एप्रिल को हजरतगंज पहुँच गया। हम लोग तो चार ही बजे 'शांति-कुटीर' में पहुँच गए थे। सब लड़के मिलाकर हम लोग बारह थे। हम लोगों ने दो दिन पहले से एक लड़का ठीक कर लिया था, परंतु उस कमबख्त ने ऐन वक्त पर धोखा दिया, और पाँच बजे तक वहाँ नहीं पहुँचा। पहले तो हम लोग डर गए कि अब सब गुड़ गोबर हो जायगा, परंतु फिर एक लड़का मिल गया। ज्यों ही रामचंद्र वहाँ पहुँचा, उसने लड़के से पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है।" उसने कहा—"मोहन।" बस, बेचारा रामचंद्र धड़ाधड़ ऊपर चढ़ आया, हम लोग दूसरे घर में छिप गए। वह धीरे-धीरे 'शांता-शांता' कहकर इधर-उधर देखने लगा। अब हम लोगों को हँसी नहीं रुकी, सब लोग ठठाकर हँस पड़े, और फिर सब लोग निकल कर उसके सामने चले आए। अब रामचंद्र वास्तव में बहुत लज्जित हो गया और अब उसकी समझ में यह बात आई कि ये सब शांता के पत्र नहीं, हम लोगों की शैतानी थी।

अभिन्न-हृदय मित्र—हेकड़प्रसाद

(३) लो, अब तो तीसरा दर्जा हो गया !

तीन मोटे युवक लाहौर से कलकत्ता जाना चाहते थे। वास्तव में तीनो बहुत तुंदिल थे, और प्रत्येक युवक दो-चार आदमियों के लिये पर्याप्त जान पड़ता था। तीनो ने ड्योढ़ा गाड़ी में सफ़र करने की सलाह की। परंतु उन लोगों ने तीसरे दर्जे का ही टिकट लिया। जब गाड़ी आई, तो तीनो ड्योढ़े दर्जे के डिब्बे में मौजूद थे।

मुग़लसराय तक वे बड़े आनंद से ड्योढ़े गाड़ी में आए। गाड़ी मुग़लसराय से आगे बढ़ी। चलती गाड़ी में टिकट-चेकर उनके डिब्बे में आया, और उनसे टिकट माँगा। उनमें से एक ने बड़े रोब से तीनो टिकट उन्हें दिखा दिए, और तब तपाक से कहा—"जनाब ! क्या आपने समझा था कि हम लोगों के पास टिकट है ही नहीं ? माफ़ कीजिएगा, हम लोग बिना टिकट के गाड़ी पर चढ़ते ही नहीं।"

टिकट-चेकर ने कहा—"तुम लोगों के पास तीसरे दर्जे का टिकट है, तुम लोग इसमें नहीं सफ़र कर सकते। यह तो ड्योढ़ा दर्जा है।"

"जनाब आली! यह स्कूल नहीं है, यहाँ तीसरा और चौथा दर्जा नहीं होगा।"

"ड्योढ़े दर्जे में चलने के कारण तुम लोगों को अधिक दाम देना पड़ेगा।"

"हम लोगों ने पहले ही किराया दे दिया है, अब हम लोग और कुछ नहीं दे सकते।"

"यह तीसरा दर्जा नहीं है। तुम्हें अधिक दाम देना पड़ेगा।"

"यह गाड़ी तीसरे दर्जे की गाड़ी से अधिक चलती है कि हम लोग अधिक किराया दें? यह नहीं हो सकता। फिर दोनों में फर्क ही क्या है?"

"तुम लोग इतनी बात भी नहीं समझते कि तीसरे दर्जे और ड्योढ़े दर्जे में क्या अंतर है?"

"नहीं।"

"देखो, इसमें कपड़े के गद्दे लगे हैं, तीसरे दर्जे में गद्दे नहीं होते।"

इसके बाद युवक ने कपड़े के गद्दे को बड़े जोर से खींचा। उन्हें गाड़ी की लकड़ी से अलग कर लिया, और फिर उन्हें उठाकर बाहर फेंक दिया, और तब गरजकर कहा—"लो, अब तो तीसरा दर्जा हो गया न? अब तो अधिक किराया नहीं देना पड़ेगा?"

अब टिकट-चेकर बहुत बिगड़े। उन्होंने कहा—"अब तुम्हें गार्ड का दाम और किराया दोनों देना पड़ेगा। नहीं तो मैं तुम लोगों को बीच ही में उतार दूँगा, तुम लोग कलकत्ते नहीं जाने पाओगे।"

अब युवक बिगड़ा, उनकी ओर बढ़ा, उनकी गरदन पकड़ ली और कहा—"अब ज्यादा मत बोलो, नहीं तो तुम्हें भी उसी जगह पार्सल कर दूँगा, जहाँ गार्ड को भेज दिया है।"

टिकट-चेकर डर गए। उन्होंने समझा कि अधिक बोलने से खैर नहीं। चुपचाप वह बाहर चले गए। कलकत्ते तक फिर उन युवकों से किसी ने कुछ नहीं कहा। इसके बाद ये युवक खूब अपनी डींग हाँकते थे, और परस्पर प्रायः कहा करते थे कि साहब को खूब छकाया।

(४) डॉक्टर खम्मार-साहब का हिंदी-ज्ञान

डॉक्टर खम्मार-साहब को इँगलैंड से आए तीस वर्ष हो गए। इतने समय में उन्होंने हिंदी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है, और अब वे भारतवर्ष में भी हिंदी के बड़े भारी ज्ञाता समझे जाते हैं।

जब मैं डम्मार-साहब को हिंदी पढ़ाने जाने लगा, तब उन्होंने भी खम्मार-साहब के हिंदी-ज्ञान की बड़ी प्रशंसा की। मैं उनसे बातचीत करने तथा उनके हिंदी-ज्ञान के थाहने का अवसर ढूँढ़ने लगा। एक दिन डम्मार-साहब ने मुझसे कहा कि खम्मार-साहब आपसे मिलना चाहते हैं। मैं शीघ्र ही उनके पास चला गया। खम्मार-साहब ने शुद्ध हिंदी में मुझसे कहा—"आइए पंडितजी! आइए।"

मैं जाकर सामने की कुर्सी पर बैठ गया। खम्मार-साहब ने फिर मुझसे कहा—"मुझे एक लेखक की आवश्यकता है। उसे मैं नियमानुसार वेतन दूँगा, क्या आप मुझे एक ऐसा लेखक दे सकते हैं, जो सुंदर लिखता हो?"

मैंने कहा—"जी हाँ, अवश्य। परंतु उसे क्या लिखना होगा ?" ग्रम्मार-साहब ने कहा—"मैं उसे बता दूँगा।"

मैंने बहुत प्रयत्न करके अपनी हँसी रोकी, और तब उनसे कहा—"हाँ, मैं शीघ्र ही आपके पास लेखक भेज दूँगा।"

फिर ग्रम्मार-साहब ने कहा—"अब पूछने आता है कि आप उसे कब भेजेंगे ?"

पहले तो मैंने उनका आशय ही नहीं समझा, परंतु जब साहब की बात खतम हो गई, तब मैंने समझ लिया कि "अब प्रश्न यह है।" की जगह पर ही उन्होंने "अब पूछने आता है" का प्रयोग किया था। मैंने साहब के प्रश्न का उत्तर दिया। इसके बाद साहब ने अपनी लियाक़त जताने के लिये हमसे हिंदी-साहित्य के संबंध में बातें करना प्रारंभ कर दिया। वह बड़ी देर तक हमसे बातें करते रहे। उनकी बातों से मुझे पता चला कि घोर तथा भगीरथ-परिश्रम करके साहब ने हिंदी-साहित्य का बहुत आविष्कार कर डाला है। वास्तव में मुझे बहुत नई बातें मालूम हुईं। ईश्वर को मैं आज कोटिशः धन्यवाद देता हूँ कि मैं वे सब बातें भूल गया, परंतु एक ऐसी बात का मुझे पता चला, जो इस समय भी मुझे स्मरण है, और मैं इस ग्रंथ के पाठकों को भी सुना देना अच्छा समझता हूँ। वह बात यह है। हम लोगों की बातचीत के बीच में भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम आ गया। इस पर साहब

उछल पड़े, और भारतेंदुजी की कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। अंत में उन्होंने कहा—

"इसी भारतेंदु हरिश्चंद्र के लड़के का नाम जायसी था। उसने भी एक रामायण लिखा है। इसी रामायण का नाम सूरसागर है।"

जब हम और कम्मार-साहब खम्मार-साहब के यहाँ से चले आए, तब कम्मार-साहब ने कहा कि कहिए पंडितजी! खम्मार-साहब का हिंदी-ज्ञान कैसा है?

मैं ठठाकर हँस पड़ा और फिर कहा—"क्या कहना है!"

जब मैं घर पहुँचा, तो प्रार्थना की कि हे परमेश्वर! ऐसे विद्वानों से हिंदी की रक्षा करो।

(५) कविजी महाराज

गनपतिलाल संयुक्तप्रदेश आगरा और अवध के एक प्रधान पुरुष हैं। इनका नाम देश के ऊँचे-से-ऊँचे विद्वानों की गिनती में भी आता है। यह खजूर-विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं। पढ़ाने के काम में बहुत ही चतुर हैं। इस कारण से विद्यार्थी लोग इनको बहुत मानते हैं, यही कारण है कि देश में आपका नाम बहुत ही ऊँचा है। आप सब विद्यार्थियों से भली भाँति परिचित हैं। परंतु विशेषकर आपकी कविता, प्रसाद, ओज तथा माधुर्यादिक गुणों से परिपूर्ण रहने के कारण, बहुत ही अलौकिक होती है। खजूर-विश्वविद्यालय में, आप काव्य-कला ही पर व्याख्यान भी देते हैं। इनके विद्यार्थी भी प्रायः अलौकिक ही होते हैं। एक बार इनको यह धुन समा गई कि कौंसिल का सदस्य होना चाहिए। बस फिर क्या था; आप शहर-शहर कौन कहे, क़सबे-क़सबे तथा गाँव-गाँव जाकर वोट के लिए प्रयत्न करने लगे और अंत में कौंसिल के सदस्य भी हो गए।

इसी साल मँगरू और घुरहू भी सदस्य चुने गए। मँगरू और घुरहू दोनो आदमी गनपतिलाल के जानी दुश्मन थे। यह दुश्मनी व्यक्ति-गत ही नहीं थी, क्योंकि इनके पुरखे भी आपस में लड़ते ही चले आए थे। गनपतिलाल का कहना है कि कम-से-कम उनके सात पुश्तों में तो अवश्य झगड़ा होता ही चला आया है। परंतु घुरहू का कहना है कि यह बात ग़लत है, उनकी सैकड़ों पुश्तों में भी कभी नहीं बना। पता नहीं कि कौन सच्चा है और कौन झूठा; परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि गनपतिलाल और घुरहू में नहीं बनती। एक दूसरे से घृणा करते हैं। दोनो कौंसिल के सदस्य हैं, परंतु दोनो दो दल के पक्षपाती हैं। जब एक दूसरे के सामने पड़ जाते हैं, तब सलाम-बंदगी हो जाती है, परंतु भीतर-ही-भीतर एक दूसरे से बहुत जलते रहते हैं।

घुरहू अपने घर ही पर रहता है। उसकी बड़ी भारी ज़मींदारी है और वह अपने आस-पास 'राजा' अथवा 'बाबू' के नाम से विख्यात है। दोनो आदमी (घुरहू और गनपति) आज कौंसिल में आए हैं।

कौंसिल में यह प्रश्न उपस्थित है कि खजूर-विश्वविद्यालय को कितनी आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। घुरहू विद्यालय के विपक्ष में बोलने की तय्यारी करके आया है। परंतु

गनपतिलाल थे तो कवि ही न! विश्वविद्यालय की निंदा करना प्रारंभ कर दिया और कहा कि खजूर-विश्वविद्यालय को ७ लाख सालाना नहीं मिलना चाहिए, केवल ४ लाख ही यथेष्ट होगा। जब खजूर-विश्वविद्यालय कवियों की वेतन-वृद्धि पर ध्यान नहीं देता, तो क्या आवश्यकता है कि कवि लोग उसकी उन्नति पर ध्यान दें।

सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि गनपतिलाल अपने विश्वविद्यालय के विरुद्ध बोल रहे हैं, परंतु उन्हें इन बातों की एकदम चिंता नहीं थी।

इस बात को सुनकर घुरहू को अपना मत बदलना पड़ा, क्योंकि गनपतिलाल उसी मत का समर्थन कर रहे थे, जो इनका विचार था। अतएव घुरहू ने एक व्याख्यान खजूर-विश्वविद्यालय की प्रशंसा में झाड़ दिया और गुप्त रीति से गनपतिलाल को खूब बनाया।

गनपतिलाल घुरहू से और भी चिढ़ गए और सोचने लगे कि इसका बदला किस प्रकार लूँ। अंत में सभा विसर्जित हो गई और अन्य लोगों ने भी गनपतिलाल को खूब ही बनाया। गनपतिलाल बहुत पहले स्टेशन पर पहुँच गए और टिकट लेकर गाड़ी पर चढ़ बैठे। आज घुरहू बहुत ही प्रसन्न थे। इसी कारण से वह शहर में मित्रों से मिलने चले गए

और स्टेशन पर बहुत देरी से पहुँचे। उन्हें संदेह था कि गाड़ी नहीं मिलेगी। स्टेशन पर आते ही उन्हें मालूम हुआ कि अभी गाड़ी छूटने में ५ मिनट की देर है। फ़ौरन् अपना सामान एक कुली को सुपुर्द किया और उससे कह दिया कि जल्द सब असबाब गाड़ी में रख दो। कुली ने सब सामान गाड़ी में रख दिया, परंतु घुरहू अभी टिकट लेकर नहीं आए। यहाँ तक कि गाड़ी लगभग चलनेवाली थी और तब तक घुरहू का कुछ पता नहीं मिला। ज्यों ही गाड़ी ने सीटी दी, त्यों ही घुरहू भी पहुँचे और अपने कुली को खोजने लगे। कुली ने उन्हें देखा और पुकारना प्रारंभ कर दिया। किसी प्रकार घुरहू भी गाड़ी पर चढ़ गए और गाड़ी पर से कुली का पैसा फेंक दिया, क्योंकि उसे पैसा देने का समय ही नहीं मिला था। जब पैसा देकर घुरहू बैठे और इधर-उधर देखना प्रारंभ किया, तब उनकी दृष्टि गनपतिलाल पर पड़ी। गनपतिलाल ने भी उन्हें देखा। देखकर दोनो की ऐसी गति हुई, मानो उन लोगों की नानी मर गई हो। परंतु अब क्या करते, गाड़ी चल रही थी। दोनो को साथ ही सफ़र करना पड़ा। प्रायः दोनो आदमी साथ सफ़र करना पाप समझते थे, परंतु आज विवश होकर उन्हें ऐसा करना पड़ा।

जाड़े का दिन था। दोनो आदमी आमने-सामने ही बैठे

थे। गनपतिलाल की बड़ी निंदा हुई थी। अतएव लाज के मारे घुरहू की ओर वह देख भी नहीं सके और आँख मूँदकर सो गए। थोड़ी देर के बाद घुरहू भी सो गए। घुरहू को नींद आ गई, परंतु गनपतिलाल को नींद कहाँ। गनपतिलाल को खजूरगाँव जाना था और घुरहू को आमगाँव।

आमगाँव के रास्ते में ही खजूरगाँव पड़ता था। गनपतिलाल उठ-उठकर देखते जाते थे कि कहीं खजूरगाँव छूट न जाय। घुरहू आनंदपूर्वक सोता चला आता था, क्योंकि उसे दूर जाना था। अंत में खजूरगाँव आ ही तो गया। गनपतिलाल उठे और देखा कि घुरहू आनंदपूर्वक सो रहा है। अतएव बहुत धीरे-धीरे अपना सब सामान लिया और उतरकर चले गए।

मिस्टर घुरहू भी आमगाँव पहुँच गए और अपना सामान लेकर घर की ओर चल पड़े। जब घर पहुँचे, तब उनको बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह अपना एक जूता भूल गए थे। और उसके बजाय गनपतिलाल का एक पहने हुए थे। गनपतिलाल पहले ही चले गए थे। दोनो आदमियों की उँचाई लगभग बराबर थी। दोनो के गोड़ का नाप भी लगभग समान ही था। और दोनो के जूते काले थे। गनपतिलाल का कुछ

पुराना था। जब गनपतिलाल खजूरगाँव के स्टेशन पर पहुँचे, तो जल्दी में जूतों की पहचान नहीं सके और एक जूता अपना तथा एक जूता घुरहू का लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गए। किसी को कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि ये घुरहू के नए जूतों का लोभ से ही उठा ले गए। यदि कोई ऐसा समझता है, तो वह बड़ी भारी ग़लती कर रहा है, क्योंकि गनपतिलाल चोर नहीं थे, मूर्ख भले ही क्यों न हों। घुरहू को तो इस ग़लती का पता उसी दम चल गया और उन्होंने उन्हें पहनना भी छोड़ दिया, क्योंकि उन्हें पहनना लज्जाजनक बात थी। परंतु गनपतिलाल तो कवि थे, उन्हें दीन-दुनिया का हाल क्या मालूम? कहने का अर्थ यह कि गनपतिलाल उन्हीं जूतों को घसीटते रहे। देखने से साफ़ मालूम होता था कि ये दो आदमी के जूते हैं, और उनमें एक बहुत ही पुराना तथा दूसरा बहुत ही नया है; परंतु कविजी को इसका क्या पता।

दूसरे दिन गनपतिलाल उन्हीं जूतों को पहनकर खजूर-विश्व-विद्यालय में पहुँचे। सब लोग उनकी ओर आश्चर्य के साथ देखते थे और इस अवसर पर सब लोगों की आँखों ने बेतार के तार का काम किया और थोड़े ही समय में यह शुभ समाचार विश्वविद्यालय भर में फैल गया। ख़ैरियत थी कि वहाँ के लड़के छोटे-छोटे नहीं

थे, नहीं तो उनकी बड़ी दुर्गति होती। तो भी इसमें कुछ संदेह नहीं कि सब लोगों के लिये गनपतिलाल एक ऐसा खिलौना हो गए, जिसमें पैसा किसी को देना नहीं पड़ा। यहाँ तक कि उन्हें स्वयं इस बात की चिंता होने लगी कि सब लोग क्यों मेरी ओर बड़े ध्यान से देखते हैं और देखकर हँसते हैं। कोई ऐसी बात नहीं, जिसे कवि न समझ सकता हो। उन्होंने इसका यह आशय निकाला कि सब लोगों को यह बात समाचार-पत्रों की सहायता से मालूम हो गई कि हमने खजूर-विश्वविद्यालय के विरुद्ध मत प्रकट किया है, इसीलिये सब लोग मुझे बना रहे हैं। इतना होने पर भी उनका ध्यान जूतों की ओर नहीं गया।

जब कविजी अपने क्लास में गए, तब सब लड़कों की दशा विचित्र हो गई। सब विद्यार्थियों ने बहुत ही कोशिश की कि किसी तरह हँसी न आवे, परंतु पचास प्रयत्न करने पर भी उनके ओठों पर मुस्किराहट आ ही जाती थी। जब उन्होंने देखा कि स्वयं हमारे विद्यार्थी ही हमें बना रहे हैं, तब उनसे नहीं रहा गया और उबल पड़े। लड़कों को बुरा-भला कहना भी प्रारंभ कर दिया। उन्होंने यह प्रश्न भी किया कि तुम लोग क्यों हँसते हो ? जब किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब उन्होंने स्वयं उस प्रश्न का उत्तर दिया और अपनी खजूर-विश्वविद्यालय के विरुद्ध

व्याख्यान देने की मूर्खता, उन लोगों को भी बतला दी, जो नहीं जानते थे। इतना करने पर भी उन्होंने देखा कि लड़कों की हँसी रुकती नहीं, बरन और भी बढ़ती जाती है। तब उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही और लड़कों को और भी डाँट-फटकार बतलाने लगे। उनके विचार में लड़के बिना दाम के खरीदे गुलाम थे, परंतु उनको इस बात का कुछ भी पता नहीं चला कि वे उन्हें बिना दाम का खेल भी दिखला रहे थे।

इस प्रकार दो दिन बीत गए, परंतु गनपतिलाल को यह पता नहीं चला कि हम एक तमाशा दिखला रहे हैं। तीसरे दिन जब कि वह एक क्लास में 'यति' पर व्याख्यान दे रहे थे, उन्हें एक पत्र मिला। पत्र पाते ही उन्होंने व्याख्यान देना बंद कर दिया और फ़ौरन् उस पत्र को एक लड़के को पढ़ने के लिए देकर कहा कि इसे पढ़ दो। मेरा चश्मा आज घर ही छूट गया है, इस कारण मैं इसे पढ़ नहीं सकता। लड़के ने पत्र पढ़कर सबको सुना दिया।

पत्र को सुनते ही लड़के बड़े ज़ोर से हँसने लगे और कविजी ने भी अट्टहास किया। इसके बाद उनका ध्यान जूतों पर गया और तब उन्हें मालूम हुआ कि सब लोग दो दिन से क्यों हँस रहे हैं। पत्र इस प्रकार था:—

आमगाँव
१-१-२५

पूज्यवर चाचाजी,

प्रणाम !

आपकी कृपा से सब कुशल है। जब आप खजूरगाँव गाड़ी से उतरे थे, तब कदाचित् भूल से आप एक मेरा भी जूता लेते चले गए। जब आप घर आइएगा तब अवश्य उसे लेते आइएगा, क्योंकि अभी वह बिलकुल नया है और आपके किसी काम का नहीं होगा।

चरण-रज-सेवक

घुरहू

अब बात खुल गई। दुनिया का साधारण मनुष्य इस पत्र को पढ़कर लज्जित होता। परंतु गनपतिलाल बहुत ही प्रसन्न हुए, कवियों के लिये, उनके विचार में, यह घटना प्रशंसा के योग्य थी, निंदा के योग्य नहीं। गनपतिलाल अपनी दृष्टि में कुछ ऊँचे होते हुए मालूम हुए और क्लास ही में बड़े ज़ोर से हँसने लगे। इसके बाद उन्होंने इस विषय पर एक महत्त्व-पूर्ण व्याख्यान देना प्रारंभ किया कि जो लोग संसार में कोई भारी कार्य करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान न दें। जो मनुष्य सर्वदा छोटी बातों पर

ध्यान देता है वह कभी बड़ा आदमी नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी शक्तियों का अधिक भाग छोटे कामों की चिंता ही में व्यतीत हो जाता है इत्यादि......इत्यादि।

अब घंटी बजी और गनपतिलाल बड़ी प्रसन्नता से बाहर निकले, मानों वह उन लोगों से पहले की हँसी का बदला लेना चाहते थे। ज्यों ही बाहर निकले, त्यों ही मियाँ मिट्ठू ने कहा कि एक पत्र आमगाँव से मेरे पास आया है। उसमें लिखा है कि आपने घुरहू का एक जूता चुरा लिया है। इसलिये वह आप पर मुक़द्दमा चलावेंगे। हमारे यहाँ उन्होंने लिखा है कि आप भी गवाही दीजिएगा। मैं देखता हूँ कि आपके पैर में एक जूता आपका है और दूसरा किसी दूसरे का। इससे यह बात सिद्ध होती है कि यह जूता घुरहू का ही है। अतएव आप अवश्य पकड़े जायँगे और घुरहू की विजय अवश्य होगी। इस प्रकार सब लोगों में बहुत दिनों तक हँसी-दिल्लगी होती रही। कुछ दिनों तक खजूर-विश्वविद्यालय में इस विषय से हास्यरस की अच्छी उन्नति होती हुई दीख पड़ी।

(६) मौलवी साहब का चेला

एक मौलवी साहब लड़कों को पढ़ाया करते थे। यद्यपि मौलवी साहब अरबी, फ़ारसी सब कुछ उम्दा पढ़ाया करते थे, किंतु मुख़्त्यारी के पढ़ाने में आपने बड़ा नाम पैदा किया था। मुख़्त्यारी पढ़ने के लिये दूर-दूर से लोग उनके पास आते थे। ताहिरअली भी मुख़्त्यारी पढ़ने के लिये मौलवी साहब के पास आए। मौलवी साहब अपनी फ़ीस पहले ही ले लिया करते थे, तब कहीं पढ़ाना शुरू करते थे, क्योंकि पहले उनके यहाँ कुछ ऐसे लड़के भी आए थे, जो पढ़कर चले गए, परंतु मौलवी साहब को फ़ीस नहीं दी। ताहिरअली बहुत ही ग़रीब आदमी थे। फ़ीस अभी नहीं दे सकते थे। मौलवी साहब बिना फ़ीस लिए पढ़ाना भी नहीं चाहते थे। अंत में यह बात निश्चय हुई कि ताहिरअली अभी कुछ रुपया न दें। मौलवी साहब पढ़ाना शुरू कर दें, जब ताहिरअली पहले-पहल मुक़द्दमा जीतें तब उस मुक़द्दमे में जितना रुपया मिले, ताहिरअली सब मौलवी साहब को दे दें। इस शर्त पर मौलवी साहब ने ताहिरअली को पढ़ाना प्रारंभ कर

दिया और ताहिरअली ने भी पढ़ना। ताहिरअली मुख़्त्यारी का इम्तहान देने चले गए और इम्तहान में पास भी हो गए। जब मौलवी साहब ने सुना कि ताहिरअली मुख़्त्यारी पास हो गए हैं, तो वह बहुत प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि अब बहुत रुपया मिलेगा। ताहिरअली ने भी सोचा कि अब मुख़्त्यारी से ख़ूब रुपया कमाऊँगा। परंतु उनका भाग्य बड़ा प्रबल था। एक भी मुक़द्दमा नहीं जीत सके, सबमें हारते ही गए। मुश्किल से भोजन का काम चलता था। मौलवी साहब भी देखते-देखते तंग हो गए। उन्होंने किसी-न-किसी तरह ताहिरअली से कुछ रुपया लेने का निश्चय किया। परंतु लेते तो कैसे? ताहिर-अली के भाग्य में मुक़द्दमा जीतना लिखा ही नहीं था। बहुत सोच-विचारकर मौलवी साहब ने ताहिरअली पर दावा कर दिया। मौलवी साहब ने सोचा कि रुपया तो मैंने इसे दिया ही नहीं, लेकिन १००) का दावा कर दूँ। अगर मैं जीत गया तो उससे १००) वसूल कर लूँगा और अगर वह जीत गया, तो भी उसकी प्रतिज्ञा के अनुसार उससे रुपया वसूल करूँगा।

मुक़द्दमा दायर हो गया। मुक़द्दमे की तारीख़ भी पड़ गई और वह तारीख़ भी आ गई। उस दिन कचहरी में बड़ी भीड़ थी। सब लोग उत्सुक थे कि देखें क्या होता है। मौलवी साहब और ताहिरअली दोनों कचहरी में आ गए। सब लोग खड़े

थे। जज ने फ़ैसला सुना दिया, मौलवी साहब हार गए और ताहिरअली जीत गए। मौलवी साहब तो यही चाहते ही थे कि ताहिरअली जीत जाय, जिससे मैं उससे उसकी शर्त के अनुसार रुपया वसूल कर सकूँ। मौलवी साहब जो चाहते थे, वही बात हुई। अब मौलवी साहब ने ताहिरअली से कहा कि अपनी शर्त के मुताबिक़ अब मुझे रुपया दो। तुमने कहा था कि जब मैं पहले-पहल मुक़द्दमा जीतूँगा, तब जो कुछ मिलेगा, वह आपको दूँगा। इस पर ताहिरअली ने जवाब दिया—"इस बार मैं जीत गया और इस बार मुझे जितना रुपया मिला है, उसे मैं आपको देने को तैय्यार हूँ; परंतु इस बार मुझे कुछ भी नहीं मिला। इसलिए मैं कुछ भी नहीं दे सकता।" ताहिरअली की बात सुनकर मौलवी साहब को देश-दुनिया की ख़बर हुई। इसके पहले उन्होंने सोचा था कि किसी प्रकार ताहिरअली को मुक़द्दमा जीतना चाहिए; फिर तो मैं उनसे रुपया जरूर वसूल कर लूँगा। किसी ने बहुत ही ठीक कहा है—"गुरु गुड़ ही रहे, चेला चीनी हो गया।"

(७) विचित्र कथा

बनारस से १२ मील की दूरी पर एक गाँव बसा हुआ है। गाँव का नाम सुजानगढ़ है। सुजानगढ़ एक बहुत ही अच्छा क़स्बा है। यहाँ पर कई जाति के लोग बसते हैं। कोई धनी हैं, कोई ग़रीब। यहाँ पर एक वृद्ध ब्राह्मण का भी घर था। ब्राह्मण का नाम था शिवमंगल। शिवमंगल की स्त्री बहुत ही अच्छी विदुषी थी। उनकी दो कन्याएँ भी पढ़ लिख रही थीं। पहली की अवस्था १२ वर्ष और दूसरी की अवस्था केवल ५ वर्ष की थी। एक दिन शिवमंगल की स्त्री ने अपने पति से कहा कि लड़की बड़ी हो गई है। इसकी शादी की चिंता क्यों नहीं करते? कब तक टालते चलोगे। चाहे जैसे हो, इस साल इसकी शादी जरूर होनी चाहिए। शिवमंगल ने कहा—"क्या तुम नहीं जानतीं कि मुझे इसकी बड़ी भारी चिंता लगी हुई है। रात-दिन इसी की चिंता मुझे मारे डालती है। घूमते-घूमते थक गया, पर कहीं पर ठीक नहीं होता। कहीं वर मिलता है, तो घर नहीं, घर मिलता है, तो जाति नहीं मिलती।

उस दिन मैं रामनिहोर पंडित के यहाँ गया था। उनके भी दो लड़के हैं। एक की अवस्था १५ वर्ष की है, दूसरे की ६ वर्ष। मैंने विचार किया था कि अपनी दोनो कन्याओं की शादी उनके दोनो पुत्रों के साथ कर दूँ। परंतु वह हमसे जाति में थोड़ा ऊँचे हैं, अतएव वे मेरा संबंध स्वीकार नहीं करते। वह मुझसे धन में बहुत ऊँचे हैं, जानते हैं कि मैं ग़रीब हूँ, धन नहीं दे सकता, इसलिये मेरे यहाँ संबंध नहीं करते। दूसरा वर एक और ठीक है, परंतु वह जाति में मुझसे कुछ नीचा है, अतएव मैं वहाँ शादी करना नहीं चाहता। वहाँ पर धन भी है, सब लोग अच्छे हैं, लड़का भी पढ़ा-लिखा है और देखने में बहुत ही सुंदर है, केवल जाति में मुझसे कुछ घटकर है। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? तुम्हीं अब बतलाओ कि अब क्या करना चाहिए?"

इस पर शिवमंगल की स्त्री बोली—"मैं क्या कहूँ, जो चाहे सो करो। परंतु इस साल विवाह अवश्य हो जाना चाहिए। लड़की बड़ी हो गई है।"

तब शिवमंगल ने कहा—"अच्छा, मैं जाता हूँ, कहीं-न-कहीं विवाह ठीक करके ही लौटूँगा।"

शिवमंगल पंडित ने घर से प्रस्थान कर दिया। मन में सोचा कि पहले फिर एक दफ़ा रामनिहोर ही के यहाँ चलें। यदि वहाँ

ठीक हो जाय, तो बहुत ही उत्तम है, यदि वहाँ ठीक नहीं होगा तो देखा जायगा। जब शिवमंगल पंडित घर से निकले, तब उनके पास केवल एक लोटा था, और कुछ नहीं। शिवमंगल पंडित रामनिहोर के घर पर पहुँच गए और जाकर उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। वह वहीं बैठ गए और कहा कि अब मुझे वचन दे दीजिए, मुझे यह लड़का दे दीजिए। रामनिहोर ने कहा कि इस साल इसकी शादी नहीं होगी। आप मुझे तंग मत कीजिए। कृपया दूसरी जगह ठीक करिए। लेकिन शिवमंगल ने और भी प्रार्थना करना प्रारंभ कर दिया। अपना हृदय खोलकर उनके सामने रख दिया। परंतु रामनिहोर माननेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने बड़े कड़े शब्दों में कहा कि मैंने आपसे कई बार कह दिया कि मैं आपके यहाँ शादी नहीं कर सकता, परंतु आप मानते ही नहीं। क्या आपको यह बात नहीं मालूम है कि मैं आपसे उत्तम ब्राह्मण हूँ। आपके यहाँ मेरा संबंध नहीं हो सकता। शिवमंगल को यह विचार बहुत बुरा जान पड़ा। उन्होंने सब लोगों के सामने ललकारकर कहा—"अवश्य मैं आपसे जाति में कुछ कम हूँ। परंतु आपके ऐसे भी संबंधी हैं, जो मुझसे भी कम हैं और जिनसे मैं जाति में बहुत उत्तम हूँ। यह भी आप को स्मरण रखना चाहिए कि आपको इस व्यवहार के लिए बहुत अफसोस करना पड़ेगा। आप एक दिन मेरे यहाँ

विवाह करने में अपनी इज्जत समझिएगा और आप मेरे घर में नावदान पर बैठकर भोजन कीजिएगा। उस दिन मैं आपको इन बातों का आपको स्मरण दिलाऊँगा। यहाँ पर जितने आदमी बैठे हैं, उन्हें भी ये सब बातें स्मरण रखनी चाहिए। यह मेरी भविष्यवाणी है। मैं उन ब्राह्मणों में नहीं हूँ, जो धन के लोभ में पड़कर अपनी इज्जत गँवा देते हैं। पंडित रामनिहोरजी ऐसे ब्राह्मणों में हैं।" इसके बाद उन्होंने सब लोगों को प्रणाम किया और उठकर वहाँ से चले गए।

वहाँ से उठकर शिवमंगल पंडित दूसरी जगह गए और कहा कि मैं बड़े संकट में पड़ा हूँ। कृपा करके आप लोग मेरा कष्ट दूर कीजिए। यद्यपि वे लोग इनसे धनी थे, परंतु उन लोगों ने विवाह करने का वचन दे दिया। प्रसन्न चित्त होकर शिवमंगल घर आए और उन्होंने अपनी स्त्री से सब कथा कह सुनाई। स्त्री ने कहा, चाहे जो हो, विवाह निश्चय हो गया, सो बहुत ही अच्छा हुआ। दोनों ओर विवाह की तैयारी होने लगी। शुभ मुहूर्त में बड़ी लड़की का विवाह हो गया। कन्या भी विदा हो गई।

अब शिवमंगल के ऊपर प्रतिज्ञा का भूत सवार हुआ। कठिन समस्या थी। इन्होंने प्रतिज्ञा तो की, परंतु अब सोचने लगे कि इस प्रतिज्ञा को कार्य के रूप में कैसे ले आऊँ। सोचते-सोचते निश्चय हुआ कि बिना धन कमाए यह प्रश्न नहीं हल हो सकता।

धन कमाने का भूत उनके सर पर सवार हो गया। उनकी स्त्री ने कहा कि क्यों इतना व्याकुल होते हो, ब्राह्मणों को शांत रहना चाहिए। धन कमाने की धुन में पागल होना अच्छा नहीं। परंतु शिवमंगल पंडित अपनी धुन के पक्के आदमी थे। वह किसी की बात सुननेवाले नहीं थे। एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि कलकत्ते चलना चाहिए। बिना वहाँ गए शीघ्र धन की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। जब उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया कि कलकत्ते चलना चाहिए, तब जाकर अपनी स्त्री से कहा। स्त्री ने कहा—"आप कलकत्ता मत जाइए। जब आप कलकत्ते चले जायँगे, तो हम लोग रो-रोकर मर जायँगे। छोटी कन्या आपके बिना एक दिन भी नहीं रह सकती।" शिवमंगल ने अपनी स्त्री को बहुत समझाया और कहा कि सबको अपनी प्रतिज्ञा का बहुत ही ध्यान रखना चाहिए। जो लोग अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान नहीं रखते, उन्हें मुर्दा समझना चाहिए। यह कदापि नहीं हो सकता कि मैं अपनी प्रतिज्ञा भूल जाऊँ। तुम किसी प्रकार की चिंता मत करना। मैं तुम लोगों के खर्च के लिये वहाँ से रुपया भेजता रहूँगा। किसी प्रकार की चिंता मत करना। हम बहुत जल्द लौट आवेंगे। इस प्रकार समझा-बुझाकर शिवमंगल पंडित कलकत्ते चले गए।

जब शिवमंगल पंडित कलकत्ता पहुँचे, तब उन्हें आटे-दाल

का भाव मालूम हुआ। न तो रहने के लिये कहीं स्थान मिलता है और न कहीं कुछ नौकरी ही। उन्होंने मन में सोचना शुरु किया कि व्यर्थ मैंने प्रतिज्ञा की। परंतु अब क्या करते? एक दिन पंडितजी हरिसन रोड पर इसी चिंता में व्याकुल होकर घूम रहे थे, इतने में एक दूसरे आदमी उधर से आते हुए दिखाई पड़े। उन्होंने इन्हें देखा और इन्होंने उन्हें। दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति भक्ति पैदा हो गई। शिवमंगल ने पहले नमस्कार किया। दूसरे पंडित का नाम आनंदमंगल था। आनंदमंगल ने भी उसका उत्तर दिया। फिर आनंदमंगल ने कहा कि "कहहु विप्र निज कथा बुझाई।" इस चौपाई का खंड को सुनते ही उनके हृदय के प्रत्येक तार बज उठे। मन में गद्गद होकर सोचने लगे कि भला एक ऐसा आदमी तो मिला, जो मेरा दुःख सुनने की इच्छा रखता है। फिर कहा कि चलिए, कहीं बैठ जायँ। आपको पूरा महाभारत सुनना पड़ेगा, क्योंकि मेरी कथा बहुत बड़ी है। दोनों साथ-साथ चले और कॉलेज स्कायर में जाकर बैठ गए। वहाँ शिवमंगल ने अपनी राम-कहानी कह सुनाई। कथा सुनकर आनंदमंगल आनंदसागर में डूबने-उतराने लगे। नाचने लगे, कूदने लगे, शिवमंगल की भुजा पकड़कर हिलाने लगे और कहा कि आज से मैं तुम्हारा भ्राता हूँ। तुम्हारे दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। कभी हमारा मत

होना, अति शीघ्र धन की प्राप्ति होगी और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायगी। जो आदमी अपनी प्रतिज्ञा के निर्वाह करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें मैं आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ।

आनंदमंगल की बातों से उन्हें बहुत संतोष हुआ। परंतु हृदय में उनके विषय में विशेष बातें जानने की प्रबल उत्कंठा जग उठी। उन्होंने कहा कि कृपा करके अपना परिचय भी मुझे दीजिए। आनंदमंगल ने कहा कि मेरा परिचय पाकर तुम्हें दुःख होगा। परंतु शिवमंगल ने कहा कि नहीं, बड़ी इच्छा होती है कि मैं आपके विषय में कुछ विशेष मालूम करूँ। कृपा करके संक्षेप ही में कहिए। तब आनंद-मंगल ने कहा, अच्छा सुनो, मैं कहता हूँ—

मैं चार भाई हूँ। एक भाई हमसे बड़े हैं और दो छोटे। सबसे अधिक मैंने पढ़ा है और भारतवर्ष-भर में मेरा बड़ा नाम है। मैं ज्योतिषी हूँ और इसकी सहायता से बहुत धन कमा सकता हूँ। मैंने बहुत धन कमा करके ईंटा गड़वा दिया। बहुत लोगों को ऋण देना प्रारंभ कर दिया और अपने पिता के मरने के बाद उनके काम में इतने रुपए खर्च किए कि सब लोग मेरी प्रशंसा करने लगे। मैं ५००) रु० महीना बहुत दिनों तक घर पर भेजता रहा था, जिसके फल-स्वरूप उस

देहात में मेरा बहुत नाम है। इसके बाद मेरे छोटे भाई की शादी एक जगह हो गई। उस शादी में मैं भी गया था। जब शादी हो गई, तब मुझे मालूम हुआ कि लड़की का कुल पवित्र नहीं है और उसके कुल में धब्बा है। मैंने अपने भाइयों से प्रस्ताव किया कि आप लोग उसे एकदम छोड़ दीजिए। परंतु वे इस बात से सहमत नहीं हुए।

अंत में उन लोगों ने मेरी बात नहीं मानी और उससे संबंध जारी रक्खा। यह बात मुझे असह्य हो गई। मैंने उन लोगों से नाता तोड़ लिया। परंतु माया मुझे नहीं छोड़ती। मन में आता था कि संन्यासी हो जाऊँ, परंतु वह भी नहीं कर सका। न तो मैं संन्यासी हूँ, न त्यागी और न गृहस्थ। आज तुमसे भेंट होने से मेरी सब बाधाएँ दूर हो गईं। आज मैं फिर गृहस्थ हूँ। तुम मेरे बड़े भाई हो। तुम्हारी स्त्री मेरी माता है। तुम्हारी कन्या मेरी कन्या है। मैंने धन कमाना भी छोड़ दिया था। कहता था कि धन कमाकर क्या करेंगे। परंतु आज से फिर धन कमाना शुरू करूँगा। कहो, यहाँ कहाँ रहते हो। घर छोड़े कितने दिन हुए।

तब शिवमंगल ने कहा कि मुझे घर छोड़े १० दिन हो गए। कलकत्ते में रहने का कुछ ठिकाना नहीं है। जहाँ जी में आया, वहाँ पड़ रहता हूँ। तब आनंदमंगल ने कहा, चलो

मेरे साथ चलो। मेरे डेरा पर रहो, तब सोचा जायगा कि किस प्रकार काम प्रारंभ करना चाहिए।

आनंद-पूर्वक भोजन करने के बाद दोनो ने विचार करना प्रारंभ किया। आनंदमंगल ने कहा—"मेरी राय है कि आप गाँव पर चले जाइए, और वहाँ जाकर एक बहुत अच्छा घर बनवाना प्रारंभ कर दीजिए। गाँव पर जाकर यह प्रसिद्ध कर दीजिए कि एक लखपती मारवाड़ी चेला फँस गया है और वह पाँच सौ रुपया महीना भेजा करेगा। मैं यहाँ से पाँच सौ रुपया महीना भेजा करूँगा। इस समय मेरे पास पाँच हजार रुपए हैं। आप इसे लेकर अपने गाँव पर चलिए। जब लड़की की शादी ठीक हो जाय, तो मुझे भी सूचना दीजिएगा। मैं अवश्य आऊँगा। इसके पहले मैं वहाँ नहीं आ सकता।

शिवमंगल पंडित के होश उड़ गए। उन्होंने यह सोचना शुरू किया कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ, अथवा यह सत्य बात है। पहले तो उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया, परंतु इस बात को सुनकर आनंदमंगल बहुत ही नाराज़ हुए और कहा कि आप मेरी बातों में विश्वास नहीं करते, इसीलिये ऐसा कहते हैं। जब मैं और आप दो सगे भाई हो गए, तब इन बातों के लिये जगह कहाँ है। इस संसार में यह कहना बहुत ही कठिन है कि कौन किसका उपकार करता है। कौन जानता है

कि यदि आप न मिले होते, तो मैं पागल हो जाता या क्या होता। भाई शिवमंगल! तुम्हारे मिलने से मुझे जो आनंद हुआ, वह अकथनीय है। मैं डावाँडोल था। अब तुम्हारे दर्शनों के कारण मेरा चित्त शांत हो गया। मेरी नौका पार लग गई। अब इसे बीच धार में मत फेंको। इसकी कुछ भी चिंता मत करो कि तुम मेरे ऋणी होगे इत्यादि...... इत्यादि...।

तब शिवमंगल ने कहा कि जैसा कहिए, वैसा ही मैं करूँगा। इस पर आनंदमंगल ने कहा, आप अपना पता मुझे लिखा दीजिए और मैं अपना पता आपको लिखा देता हूँ। कल प्रातःकाल आप पाँच हज़ार रुपए लेकर गाँव पर चले जाइए, और घर बनवाना प्रारंभ कर दीजिए। मैं पाँच सौ रुपए हर महीने भेजा करूँगा। प्रातःकाल होते ही आनंदमंगल ने पाँच हज़ार की अशर्फ़ियाँ शिवमंगल के सामने लाकर रख दीं और कहा कि जल्दी चलिए, नहीं तो गाड़ी छूट जायगी। दोनो आदमी स्टेशन की ओर दौड़े। इस समय शिवमंगल आनंदमंगल की बातों का पालन मंत्र-मुग्ध की भाँति करते थे।

इधर शिवमंगल की स्त्री बहुत ही उदास रहा करती थी। पति के वियोग का दुःख उसे पहले कभी नहीं सहना पड़ा

था, अतएव रह-रहकर वह और भी घबरा उठती थी। छोटी कन्या तो अपने पिता के लिये पागल-सी हो रही थी। स्त्री ने कहा—"उनको गए दस दिन से अधिक हो गए, परंतु आज तक कोई समाचार नहीं मिला, न-मालूम कैसे हैं।"

शिवमंगल की स्त्री ऐसा सोच ही रही थी कि इतने में शिवमंगल पंडित आ पहुँचे। उनकी स्त्री बहुत प्रसन्न हुई। लड़की दौड़कर धाई और पिता के गले लिपट गई। वास्तव में वह बहुत ही अपूर्व दृश्य था।

इसके बाद शिवमंगल ने अपनी सब नई कथा कह सुनाई। उसी दिन गाँव में सबको मालूम हो गया कि एक सेठ फँस गया है और शिवमंगल पंडित एक नया मकान बनवाएँगे। बहुत लोगों ने समझा कि यह बात झूठी है; परंतु जब काम प्रारंभ हो गया, तब सब लोगों को विश्वास होने लगा। इधर पाँच सौ रुपए भी प्रत्येक महीने में पहुँचने लगे। अब शिवमंगल की बड़ी इज्जत होने लगी। आस-पास के धनी लोगों में आपकी गणना होने लगी। सब लोग ऋण के लिये भी इनके यहाँ आने लगे। इन्होंने लोगों को क़र्ज़ा भी देना प्रारंभ कर दिया। सब लोगों को मालूम था कि इनके कोई लड़का नहीं है, केवल एक लड़की है। जितना धन है, सब उसी आदमी को मिलेगा, जिसके घर इस कन्या

की शादी होगी। सब लोगों की गृद्ध-दृष्टि इनकी ओर नहीं, इनके धन की ओर लगी हुई थी।

पंडित रामनिहोर भी शिवमंगल के धन की अब इच्छा करने लगे। मन में कहते थे कि व्यर्थ मैंने ब्राह्मण को अपने दरवाजे से भगा दिया। यदि उस दिन मैंने उसे न भगा दिया होता, तो आज शिवमंगल की सारी संपत्ति मेरी होती, उनकी कन्या भी मेरे ही घर आती। मैंने सुना है कि कन्या बहुत रूपवती तथा गुण का आगार है। उस दिन मैं पागल हो गया था, नहीं तो कभी ऐसा अनर्थ न करता। क्या किया जाय, अब कुछ उपाय नहीं है। अगर इतने पर भी वह ब्राह्मण मेरे यहाँ शादी करने आवे, तो मैं अवश्य स्वीकार कर लूँगा। पंडित शिवमंगल तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते थे, उन्होंने शादी का पैग़ाम पंडित रामनिहोर के यहाँ भेज दिया। उन्होंने भी शादी करना स्वीकार कर लिया और शादी की तिथि भी नियत हो गई।

बारात में वे सब लोग भी आए थे, जिनके सामने पंडित शिवमंगल ने प्रतिज्ञा की थी। ये लोग अपने मन में सोचते थे कि अंत में पंडित शिवमंगल, पंडित रामनिहोर की बेइज्जती अवश्य करेंगे, परंतु उन लोगों ने देखा कि उन्होंने पंडित राम-निहोर की बड़ी प्रतिष्ठा की, और उन्हें भोजन करने के लिये

सदा एक ही स्थान पर एक ऊँचे आसन पर बैठाया। विवाह हो गया, लड़की विदा हो गई।

अंत में सारी बारात को पंडित शिवमंगल ने एकत्रित किया और उस स्थान के पत्थरों को हटवा दिया, जहाँ पर पंडित रामनिहोर प्रतिदिन भोजन किया करते थे। सब लोगों ने देखा, उसी के नीचे-नीचे नाबदान बह रहा था।

(८) लड़का या लड़की

घसीटा साहु ने कौड़ी-कौड़ी जोड़कर एक अच्छी और खासी संपत्ति इकट्ठा कर ली थी। वह प्रायः लोगों से कहा करते थे कि देखो, दो लाख रुपया मैंने इन्हीं दोनो छोटे हाथों परिश्रम करके एकत्रित कर लिया है। घसीटा साहु का कहना वास्तव में सच था, क्योंकि जब उनके पिता मरे थे, तब घसीटा साहु को उनके कफ़न के लिये रुपया उधार लेना पड़ा था। इतना धन उन्होंने एड़ी और चोटी का पसीना एक करके पैदा किया था। जो लोग उन्हें जानते थे, वे तो उन्हें अव्वल नंबर का कंजूस कहते थे, परंतु स्वयं घसीटा साहु अपने को मितव्ययी समझते थे और दो-तीन बार अच्छी तरह से सोच लेने के बाद ही एक पैसा ख़र्च करते थे। उन्हें अपना पहला जीवन अच्छी तरह से याद था और उन्हें यह बात भी भली भाँति स्मरण थी कि अपने जीवन के पहले तीस वर्ष में उन्हें एक-एक पैसे के लिये कैसे तड़पना और तरसना पड़ा था। इस समय उनकी अवस्था लगभग पचास वर्ष की थी। इतनी संपत्ति इन्होंने इसी अंतिम बीस वर्ष में पैदा की

थी। घसीटा साहु को एक बात की बड़ी चिंता रहा करती थी, वे अभी तक अविवाहित थे।

अब इधर पाँच वर्ष से वे अपने विवाह के लिये बहुत व्यग्र रहा करते थे। उनकी समझ में यह बात भली भाँति आगई थी कि बिना रुपए खर्च किए उनकी शादी नहीं हो सकती। इसी-लिये उन्होंने इधर पानी की तरह रुपया बहाना प्रारंभ कर दिया था। पहले तो जो कहता था कि मैं आपकी शादी ठीक करवा दूँगा, वही कुछ-न-कुछ अवश्य पा जाता था। इसी चाल से एक आदमी ने इनसे पचास रुपया वसूल किया, दूसरे ने एक सौ और तीसरे ने दो सौ। पचासों आदमियों ने इन्हें आशा दिलाई थी, परंतु अभी तक उन्हें स्त्री के मुख देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। इसलिये इस मामले में भी घसीटा साहु अब समझ-बूझकर रुपए खर्च करते थे। इसीलिये जब एक आदमी ने उनके पास आकर उनसे कहा कि मैं अपनी लड़की की शादी आपसे करना चाहता हूँ, तब उन्हें पहले विश्वास नहीं हुआ, तथापि उन्होंने ऊपर से उसका खूब आदर-सत्कार किया।

आगंतुक ने अपना नाम मोहन साहु बतलाया। मोहन साहु ने कहा कि आप चलकर पहले लड़की देख लीजिए, उसके बाद मैं इस संबंध में आपसे बातें करूँगा। घसीटा साहु को

कुछ-कुछ आशा हुई। पहले तो उन्होंने अपने मन में सोचा कि किसी को भेज दूँ और वही जाकर देख आवे; परंतु फिर उन्हें स्मरण हो आया कि इसी प्रकार रघुनंदनसिंह ने उन्हें धोखा दिया था। इसलिये उन्होंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि अब मैं इस संबंध में किसी का विश्वास नहीं करूँगा। इसलिये घसीटा साहु ने स्वयं जाकर उस बालिका को देखने का विचार किया। दूसरे दिन जब मोहन साहु ने अपने घर के लिये प्रस्थान किया, तो वह भी उनके साथ थे।

मोहन साहु का घर बसंतपुर घसीटा साहु के घर से बीस कोस की दूरी पर था। परंतु दोनो ही गाँव सड़क पर थे, इसलिये दोनो साहु शीघ्र ही बसंतपुर पहुँच गए। मोहन साहु आगे-आगे चल रहे थे और घसीटा साहु उनके पीछे। एक बहुत ही सुंदर मकान के सामने मोहन साहु खड़े हो गए और घसीटा साहु से कहा—"यही हमारा घर है।" घसीटा साहु अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा, यह तो एक इज्जतदार आदमी का घर है। अगर मेरी शादी यहाँ हो जाय, तो मेरी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जाय। वहाँ पर उनकी वास्तव में बड़ी खातिर हुई, फौरन् जलपान आया, हुक्का तंबाकू का प्रबंध हुआ और पान भी सामने रक्खा गया। एक घंटे के बाद मोहन साहु ने उनसे कहा—" चलिए, भोजन

तैयार है।" घसीटा साहु भीतर के ठाट-बाट को देखकर और भी अधिक प्रसन्न हुए और घर उनकी दृष्टि में एक प्रतिष्ठित आदमी और रईस का जान पड़ा। भोजन करने के बाद मोहन साहु ने घसीटा साहु को भीतर के एक कमरे में इशारे से बुलाया और एक कुर्सी पर उन्हें बैठा दिया। उसी घर में एक कन्या पहले ही से बैठी थी। अब क्या था, घसीटा साहु आँखमय हो गए और उसे घूरने लगे। मोहन साहु ने कहा—"बेटी! लजाने की कोई बात नहीं है, घूँघट उठाले।" इतना कहने पर भी बेटी ने घूँघट नहीं उठाया। अंत में स्वयं मोहन साहु ने उसका घूँघट ऊपर उठा लिया, और घसीटा साहु ने उस सुंदर मुख को भली-भाँति देख लिया।

इसके बाद मोहन साहु ने इशारा किया और दोनो आदमी घर के बाहर निकल गए।

घसीटा साहु के ऊपर उस सुंदर मुँह का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। वह अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए। स्वयं अपने को इस सफलता पर बधाई देने लगे और उनके मन में आया कि स्वयं अपनी पीठ ठोक लूँ। उन्होंने अपने मन में कहा—"किसी ने बहुत ही ठीक कहा है—देर आयद्, दुरुस्त आयद्।" बाहर और भी बहुत आदमी बैठे थे। कुछ देर तक इन लोगों में इधर-उधर की बातें होती रहीं। अंत में घसीटा साहु ने

अपने घर के लिये प्रस्थान कर दिया और मोहन साहु बहुत दूर तक उन्हें पहुँचाने के लिये आए। लाख प्रयत्न करने पर भी घसीटा साहु उस मोहनी मूर्ति को नहीं भूल सके, उनके ऊपर रूप का जादू चल गया था। रह-रहकर वह अपने मन में कह उठते थे—"वास्तव में वह बालिका बड़ी सुंदर थी।"

दूसरे दिन फिर मोहन साहु घसीटा साहु के घर गए। अब घसीटा साहु ने उनकी बड़ी इज्ज़त की। इन लोगों में बड़ी देर तक एकांत में बातें होती रहीं। इस बीच में मोहन साहु ने अपने घर का सब कच्चा चिट्ठा उन्हें कह सुनाया और उनके मन में यह बात भली भाँति बैठा दी कि पहले वह बहुत धनी थे, परंतु व्यापार में घटी आ जाने के कारण से वे इधर निर्धन हो गए थे। अंत में उन्होंने घसीटा साहु से दस हज़ार रुपया माँगा और एक महीना बाद सब ऋण लौटा देने का वादा किया। पहले तो घसीटा साहु ने इस संबंध में बहुत कुछ आगा-पीछा किया, परंतु अंत में उन्हें बसंतपुर का भव्य भवन, भवन के भीतर का सुंदर कमरा और सुसज्जित कमरे के भीतर की वह सुंदर बालिका—ये सब बातें स्मरण हो आईं। उन्हें विश्वास हो गया और उन्होंने मोहन साहु को दस हज़ार रुपया दे दिया।

इस दिन के बाद मोहन साहु ने आकर घसीटा साहु का

सरेच्छा कर दिया, विवाह-संबंधी सब बातें तय हो गईं और तिलक का दिन नियत हो गया। घसीटा साहु अब वास्तव में बहुत प्रसन्न थे। तिलक के ठीक तीन दिन पहले मोहन साहु घसीटा साहु के घर पहुँचे और उनसे कहा कि हमारे घरवाले आपके यहाँ लड़की की शादी नहीं करना चाहते। वे कहते हैं कि इसमें संदेह नहीं कि घसीटा साहु धनी हैं, इस समय उनके पास रुपया है; परंतु हमारी प्रतिष्ठा बहुत बढ़कर है, वहाँ शादी करने से हम लोगों की बेइज्जती होगी। ऐसी दशा में मैं बड़े संकट में पड़ गया हूँ, समझ में नहीं आता, क्या करूँ। इस बात को सुनकर घसीटा साहु बहुत घबराए, उनकी आशा पर पानी फिर गया, और उनके पैर के नीचे की धरती सरकती हुई मालूम पड़ी, उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उन्होंने अपने मन में कहा—"क्या वह सुंदर बालिका अब मेरी नहीं हो सकती।"

मोहन साहु ने घसीटा साहु को दिलासा देते हुए कहा—"परंतु वह लड़की मेरी है, मैं जिससे चाहूँ, उसका विवाह कर सकता हूँ, मर्दों की जबान एक होती है, मैं उसकी शादी जरूर आप ही से करूँगा, आप मेरी बातों का विश्वास मानिए।" अब घसीटा साहु को बड़ी प्रसन्नता हुई और उनकी आशा-लता फिर लहलहा उठी। अंत में मोहन साहु ने

कहा—"परंतु मेरे घरवाले विवाह का खर्चा नहीं देना चाहते; इसलिये इस संबंध में आपको मेरी सहायता जरूर करनी पड़ेगी।" कुल का मतलब यह कि आज फिर मोहन ने घसीटा से चार हजार रुपया घसीट लिया और अपने घर का रास्ता नापा।

घसीटा साहु का तिलक चढ़ गया। परंतु इस तिलक में लड़की की ओर से सिर्फ मोहन साहु आए थे। उन्होंने घसीटा से पहले ही कह दिया था कि तिलक में मेरे घर का कोई नहीं आवेगा, सिर्फ मैं अकेला आऊँगा। परंतु घसीटा साहु ने अपनी बहन, फूफा तथा नानी वगैरह सबको नेवता दिया और सबको बुलवा लिया था। घसीटा अपनी शादी बड़ी धूम-धाम से करना चाहता था। तिलक के दिन विवाह का दिन भी नियत हो गया।

विवाह के ठीक चार दिन पहले मोहन साहु घसीटा साहु के घर पहुँचे और उनसे कहा—"क्या कहूँ? घरवाले कहते हैं कि हम लोग घसीटा की शादी नहीं कर सकते। अगर घसीटा यहाँ आवेंगे, तो उनके रक्त से बसंतपुर की धरती लाल हो जायगी।"

इस बात को सुनकर वह बहुत घबराए, उन्होंने अपने मन में कहा—"क्या मेरा दस और चार चौदह हजार रुपया

यों ही चला जायगा ? क्या अब उस सुंदरी के दर्शन न होंगे ?"

मोहन साहु ने कहा—"आप घबराइए मत। मोहन साहु जिस बात का वादा करता है, उसे करके ही दम लेता है। अगर वे वहाँ से शादी नहीं करेंगे, तो मैं अपनी कन्या का विवाह भवानीपुर से कर दूँगा। भवानीपुर में मेरी शादी हुई थी। मैं अपनी लड़की के साथ वहीं चला जाऊँगा और वहीं से आपका विवाह उसके साथ कर दूँगा। भवानीपुर में रेलवे-स्टेशन भी है। आप अपनी बारात को स्टेशन पर ही रख लीजिएगा। वहीं शादी होगी और वहीं से मैं लड़की भी विदा कर दूँगा।" यसोदा की अंतरात्मा प्रसन्न हो गई। उन्होंने अपने मन में मोहन की बड़ी प्रशंसा की और उसकी सब बातों का विश्वास कर लिया। उसने कहा—"ठीक है, यह उपाय बहुत ठीक है।"

फिर मोहन साहु ने कहा—"देखिए ! मैं चाहता हूँ कि ऐसा न हो कि मेरे घरवाले भवानीपुर में भी आकर कोई उपद्रव खड़ा कर दें। इसलिये मैं स्टेशन पर ही विवाह भी कर देना चाहता हूँ। अगर मैं अपनी ससुराल में विवाह का प्रबंध करूँ, तो संभव है कि मेरे घरवाले भी वहीं पहुँच जायँ और कोई उपद्रव खड़ा कर दें।"

घसीटा साहु ने प्रसन्नता-पूर्वक कहा—"हाँ, आपकी राय बिलकुल ठीक है। स्टेशन पर विवाह करना ही उत्तम होगा।" अंत में कुछ रुपया लेकर मोहन साहु विदा हो गए।

घसीटा साहु नियत तिथि को भवानीपुर पहुँच गए। वहाँ पर मोहन साहु पहले ही से उनके लिये इंतज़ार कर रहे थे। नियत समय पर उनकी शादी हो गई और मोहन साहु ने कन्या-दान आदि की सब कार्रवाई कर दी। विवाह करने के बाद मोहन साहु ने घसीटा से कुछ और रुपया ऐंठना चाहा, परंतु घसीटा एक नंबर के काइयाँ थे, उन्होंने विवाह के बाद मोहन को एक पैसा भी नहीं दिया और उलटे उन्हीं पर धौंस जमाना आरंभ कर दिया। अंत में मोहन ने उनको एकांत में ले जाकर कहा—"मुझे सिर्फ एक हज़ार रुपया और दे दीजिए, मैं इसी महीने में आपका सब रुपया लौटा दूँगा।"

"अब एक पैसा भी नहीं।"

"एक पैसा भी नहीं।"

"एक पैसा भी नहीं।"

"समझकर जवाब दीजिए।"

"खूब समझा है।"

"अब मैं आपका संबंधी हो गया, इसका भी तो विचार कीजिए।"

"इससे क्या।"

"इससे क्या ?"

घसीटा ने तड़पकर कहा—"हाँ, इससे क्या ?"

"तब आप पीछे पछताइएगा।"

"क्यों ?"

"मैं अभी आपसे कह देता हूँ कि एक हज़ार रुपया अभी दे दीजिए, नहीं तो पीछे पछताइएगा।"

"किसलिये पछताऊँगा।"

"अच्छा, बहुत शीघ्र आपको मालूम हो जायगा।"

"क्या मालूम हो जायगा ?"

"आटे और दाल का भाव।"

अब घसीटा और भी अधिक बिगड़ गए और ज़ोर-ज़ोर से मोहन को दुत्कारने लगे। मतलब यह कि विवाह के बाद उन्होंने मोहन को एक पैसा भी नहीं दिया।

घसीटा अब अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए और वह स्वयं अपनी खुशामद करने लगे। उन्होंने कहा—"चलो, बीस-पचीस हज़ार रुपया लग गया, तो क्या हुआ, घर तो आबाद हो गया। चलो, अच्छा हुआ; माता भी प्रसन्न होगी और बिरादरी में अब हमारा नाम हो जायगा। जो लोग कहते थे कि मेरी शादी अब नहीं हो सकती, उनके मुँह में कालिख तो

घुत गई, अब तो वे कुछ नहीं कह सकेंगे। सबसे अच्छी बात तो यह हुई कि स्त्री बहुत ही अधिक सुंदर मिली। चंद्रमुखी है, चंद्रमुखी।" इन्हीं सब बातों के सोचते-सोचते घसीटा अपनी स्त्री के सुंदर मुँह के देखने के लिये व्याकुल हो गए। इतने ही में गाड़ी आ गई और वह अपनी बारात तथा स्त्री के साथ अपने घर के लिये रवाना हो गए।

घसीटा साहु ने दिल खोलकर सब लोगों को इनाम दिया, परजा और पवनी सबको प्रसन्न किया और अपने संबंधियों को भी नई लगन की प्रसन्नता में मालामाल कर दिया। नई दुलहिन के रूप की प्रशंसा सुनकर उनके पैर जमीन में नहीं पड़ते थे। इस अवसर पर उनके घर पर बहुत-से संबंधी इकट्ठे हुए थे, उनमें कुछ पुरुष थे और कुछ स्त्रियाँ। इन स्त्रियों में बुधिया बड़ी चालाक थी। उसकी अवस्था अभी सोलह वर्ष से अधिक नहीं थी और घसीटा साहु की उस पर विशेष कृपा रहा करती थी। बुधिया इस बात से और भी अधिक प्रसन्न हुई कि नई दुलहिन की भी उसके ऊपर विशेष कृपा है।

नई दुलहिन किसी के सामने नहीं होती थी और न किसी से कुछ बातें ही करती थी। जब कोई दूसरी स्त्री भी उसके पास जाती थी, तो नई दुलहिन बहुत लंबा-चौड़ा घूँघट काढ़ती

और मुँह से कुछ भी नहीं बोलती थी, परंतु बुधिया से वह घुल-घुलकर बातें करती थी। पहले ही दिन उसने बुधिया के द्वारा घसीटा के यहाँ कहला भेजा कि जो आभूषण उसे मिले हैं, वे उसकी मर्यादा के अनुकूल नहीं, और न उनकी संख्या ही अधिक है। मूल्य में भी कुछ गहने बड़े हल्के हैं। बुधिया ने जाकर ये सब बातें घसीटा से एकांत में कह दीं। उन्होंने कुछ गहनों का तो उसी समय प्रबंध कर दिया और शेष आभूषणों के शीघ्र बनवा देने का वादा किया।

दूसरे दिन लगभग नौ बजे रात को बुधिया दुलहिन के घर में घुसी हुई थी और उससे बातें कर रही थी। वहाँ पर और कोई नहीं था। घर के और सब लोग काम-धंधे में लगे हुए थे। इसी समय बुधिया बड़े ज़ोर से चिल्ला उठी। एक आदमी इसी समय बड़े ज़ोर से घसीटा के घर के बाहर निकल गया। सब लोग बुधिया की ओर दौड़े, इस समय वास्तव में उसकी बुरी गति थी; वह बड़े ज़ोर से साँस ले रही थी और लोगों के बहुत पूछने पर भी अपने मुँह से जल्दी से कुछ नहीं कह सकी। जब कुछ सँभली, तो उसने सब पुरुषों को अलग हटा दिया और स्त्रियों से अपनी दुर्दशा तथा दुर्घटना का वर्णन किया। उनमें से एक बुड्ढी स्त्री ने पुरुषों से आकर कहा—"वह लड़की नहीं लड़का है।"

क्षण-भर में यह समाचार गाँव-भर में फैल गया कि घसीटा की नई दुलहिन लड़की नहीं लड़का है। गाँव-भर में मनोरंजन का यह अच्छा मसाला मिला, खूब हँसी हुई और कुछ लोग तो हँसी के मारे दंग हो गए। इधर घसीटा साहु को स्त्रियों की बात का कुछ विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा—"गाँव की स्त्रियाँ मुझे बेइज्जत करने के विचार से ऐसी असंभव बात फैला रही हैं।"

कुछ लोगों ने प्रस्ताव किया कि अब परीक्षा कर ली जाय, कुछ लोगों ने कहा कि ऐसा करना अनुचित होगा। अंत में सब लोगों ने स्त्री और पुरुष के पहचानने का पैमाना तैयार किया और इस प्रश्न को हल करने का विचार किया।

इसी समय पता चला कि दुलहिन (अथवा लड़का) भाग गई है (या भाग गया है)।

घर के सब लोगों ने साधारण रूप से तथा घसीटा ने विशेष कर चारों ओर खूब खोजा, कोना-कोना खोज डाला, हाँड़ी और अँचार का बर्तन भी बिना ढूँढ़े नहीं छोड़ा, परंतु दुलहिन का कुछ भी पता नहीं चला। लड़का बुधिया की दुर्गति करके सब गहना लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गया था।

घसीटा साहु को मोहन ने घसीटवा बना के छोड़ा। अब इन्हें पता चला कि शुरू से आखीर तक मोहन की सब बातें

जाती थीं। पहले तो यह बहुत झेंपे, परंतु फिर इन्हें क्रोध आया, इन्होंने जाकर थाने में इत्तिला कर दी और थानेदार के साथ उस स्टेशन पर पहुँचे, जहाँ इनकी शादी हुई थी। वहाँ पर इन्होंने तथा थानेदार साहब ने मोहन साहु की ससु-राल के खोजने का बहुत प्रयत्न किया ; परंतु उसका कुछ भी पता नहीं चला। अंत में इन लोगों ने मोहन साहु के घर—बसंतपुर की ओर प्रस्थान कर दिया।

थानेदार साहब और घसीटा साहु बसंतपुर पहुँच गए। पास के थाने से थानेदार साहब ने अपने साथ बीस सिपाहियों को ले लिया था। घसीटा के इशारा करने पर थानेदार साहब ने उस मकान को चारो ओर से घेरवा लिया। गाँव के बहुत लोग इकट्ठा हो गए। थानेदार साहब ने घरवालों से पूछा—"मोहन साहु कहाँ हैं ?"

सबोंने कहा—"कौन मोहन साहु ?"

थानेदार—"वही, जिसने अपनी लड़की की शादी घसीटा साहु से की है।"

गाँववालों ने कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं ! इस गाँव में पाँच पीढ़ी में भी मोहन साहु किसी का नाम नहीं है। यह तो लाला लोगों का गाँव है। इस गाँव-भर में कोई साहु नहीं रहता।"

अब तो थानेदार साहब घबराए। घसीटा साहु तो चकरा गए। बहुत प्रयत्न करने पर भी मोहन साहु का कुछ पता नहीं चला। अंत में थानेदार साहब घसीटा से बिगड़े, झूठा मुक़-द्दमा चलाने के अपराध में, उसे चालान करने की धमकी दी, उससे कुछ रुपया ऐंठा और चले गए।

थानेदार साहब के चले जाने पर भी घसीटा ने मोहन साहु के पता लगाने का भगीरथ-प्रयत्न किया। गाँव के कुछ ग़रीब लोगों को घूस देने का वचन दिया। मोहन साहु के दुश्मनों का पता लगाया कि शायद उन्हीं से कुछ टोह मिल जाय ; परंतु उन्हें कुछ भी सहायता न मिली। अब गाँव-भर के आदमी उनके चारो ओर खड़े हो गए और एक प्रकार से उन्हें चिढ़ाया करते। अंत में घसीटा ने वहाँ से चल देने का विचार किया। जब घसीटा मोटर पर चढ़ने लगे, तो बसंतपुर के कुछ लोग चिल्ला उठे—"बूढ़े वर की जय।"

इसी समय लड़कों ने शोर मचाया—"बूढ़े बाबा की जय!"

आकाश प्रतिध्वनित हो उठा—"बूढ़े बाबा की जय।"

(६) सुर्ख़ और मूर्ख में क्या अंतर है

महाराजा भूपालसिंह को इस बात का बहुत अभिमान था कि उनके राज्य के भीतर एक ऐसा विद्वान् था जो सारे संसार में प्रसिद्ध था और जिसकी गणना संसार के मुख्य-मुख्य दार्शनिकों में की जाती थी। इनका चेहरा लाल था, इसलिये सब लोग इन्हें मिस्टर सुर्ख़ ही कहा करते थे। राज्य-भर में इनका यह नाम प्रसिद्ध इतना था कि लोग इनका असली नाम जानते भी नहीं थे। महाराजा भूपालसिंह भी इन्हें इसी नाम से जानते थे।

मिस्टर सुर्ख़ अपना सब समय पढ़ने में ही बिताते थे और किसी के यहाँ आते-जाते नहीं थे। यही कारण है कि जब महाराजा भूपालसिंह की कन्या के विवाह के उपलक्ष में एक बड़ा भारी भोज हुआ, उसमें भी यह नहीं गए। इस भोज में महाराजा भूपालसिंह की ओर से उन्हें निमंत्रण भी आया था, तथापि पुस्तकों के अध्ययन में लगे रहने के कारण से मिस्टर सुर्ख़ उस भोज में सम्मिलित नहीं हो सके। इस भोज

में बाहर से आए हुए कई महाराजा भी भाग ले रहे थे। ये लोग भी मिस्टर सुर्ख तथा उनकी विद्वत्ता के बारे में बहुत कुछ सुन चुके थे। इनमें से एक ने कहा—"कहिए महराजा! मिस्टर सुर्ख कहाँ हैं? मैंने उनकी बड़ी प्रशंसा सुनी है, मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।" इस बात को सुनकर महाराजा भूपालसिंह का मन आनंद और अभिमान से नाच उठा, परंतु उन्हें इस बात से कष्ट भी हुआ कि मिस्टर सुर्ख निमंत्रित किए जाने पर भी भोज में नहीं आए।

दूसरे दिन महाराजा भूपालसिंह ने विशेष करके मिस्टर सुर्ख को निमंत्रित किया और उनके यहाँ लिखकर भेजा कि बाहर के सब महाराजा लोग आपका दर्शन करना चाहते हैं; क्योंकि सब लोगों ने आपका नाम सुना है, परंतु आपको देखा नहीं है। मिस्टर सुर्ख अब बहुत प्रसन्न हो गए, उनका अहंकार जग गया और वे दूसरे दिन भोज में सम्मिलित होने के लिए गए। महाराजा भूपालसिंह ने मिस्टर सुर्ख की बड़ी प्रतिष्ठा की और मिस्टर सुर्ख को भोजन भी उसी मेज पर रखवा दिया, जिस पर स्वयं उनका भोजन रक्खा हुआ था। इस प्रकार एक ही मेज के एक तरफ महाराजा भूपालसिंह बैठ गए और दूसरी ओर मिस्टर सुर्ख। दूसरे राजे तथा महाराजे इधर-उधर बैठ गए। महाराजाओं ने मिस्टर सुर्ख की

वास्तव में बड़ी प्रतिष्ठा की। परंतु मिस्टर मुर्ख में विद्या का यह बल मौजूद था, जो धन के सामने झुकना नहीं जानता। उन्होंने इन राजाओं की कुछ चिंता नहीं की और अपने ध्यान में मग्न रहे। राजाओं को यह बात खटकने लगी। महाराजा भूपालसिंह ने भी इसे लक्ष्य किया। उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने बिगड़कर मिस्टर मुर्ख से कहा—"मुर्ख और मूर्ख में क्या अंतर है?" मिस्टर मुर्ख ने स्थिर भाव से उत्तर दिया—"सिर्फ़ एक मेज़ का।"

(१०) महारानी विक्टोरिया और कारलाइल

प्रधान मंत्री ने महारानी विक्टोरिया से कहा—"महारानी साहिबा ! मिस्टर कारलाइल अब संसार-भर में प्रसिद्ध हो गए हैं। फ्रांस और जर्मनीवाले उनकी प्रशंसा करते हैं। यहाँ के लोग भी उन्हें बहुत मानते हैं, परंतु अभी तक महारानी साहिबा के दरबार से उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं हुई। महारानी साहिबा ने उनका वास्तविक मूल्य नहीं आँका। राज्य में इस संबंध में चर्चा हो रही है। सब लोग कहते हैं कि बहुत पहले महारानी के दरबार को उन्हें स्वागत करना चाहिए था।"

महारानी विक्टोरिया ने प्रधान मंत्री की ओर देखा और देखकर मुस्किरा दिया, फिर वह घबराकर चारो ओर देखने लगीं। अंत में उन्होंने कहा—"हाँ, मैंने ग़लती की, बहुत पहले ही मुझे उनकी उचित प्रतिष्ठा करनी चाहिए थी। अच्छा, मैं अब अपनी ग़लती सुधारूँगी और मिस्टर कारलाइल को अपने दरबार की सबसे ऊँची पदवी दूँगी, और सजे हुए दरबार में उन्हें बुलाकर उनकी प्रतिष्ठा करूँगी।

वास्तव में कारलाइल एक बड़े भारी लेखक और प्रगाढ़ विद्वान् हैं। प्रधान मंत्री ! कल ही दरबार सजाओ, दरबारियों को बुलाओ, मिस्टर कारलाइल को निमंत्रित करो, कल ही दरबार की सर्वश्रेष्ठ पदवी से मैं उन्हें विभूषित करूँगी।"

प्रधान मंत्री ने कहा—"जैसी महारानी साहिबा की आज्ञा।" महारानी विक्टोरिया ने कहा—"जाओ, तैयारी करो।"

प्रधान मंत्री ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया। थोड़ी देर बाद महारानी ने फिर उसे बुलाया और उससे कहा—"देखो, कोई जानने न पावे कि कल दरबार क्यों लग रहा है। स्वयं मिस्टर कारलाइल भी इस संबंध में कुछ न जानें। स्वयं मैं दरबार में ही इसकी सूचना दूँगी।" प्रधान मंत्री चला गया।

सब तैयारियाँ हो गईं। दरबार लग गया। महारानी विक्टोरिया भी आ गईं और कारलाइल भी। सब लोग आज बहुत उत्सुक थे, सब लोग जानना चाहते थे कि आज क्यों दरबार लगा है।

महारानी विक्टोरिया उठीं, उन्होंने सभा के बीच में ही मिस्टर कारलाइल का खूब स्वागत किया। उनकी खूब प्रशंसा की और बहुत प्रतिष्ठा की। कई बार करतल-ध्वनि से आकाश-मंडल गूँज उठा और अंत में महारानी ने अपने दरबार की सर्वश्रेष्ठ पदवी से मिस्टर कारलाइल को विभूषित कर दिया।

सब लोग प्रसन्न हो गए, और महारानी की प्रशंसा करने लगे। परंतु मिस्टर कारलाइल के ऊपर इन सब बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। दरबार के बीच में भी वह किसी विषय के बारे में सोचते ही रहे। अंत में मिस्टर कारलाइल ने महारानी से पूछा—"आपने सिर्फ़ इसी काम के लिये मुझे बुलाया था अथवा और कोई काम है ?" महारानी ने कहा—"सिर्फ़ इसी काम के लिये।"

मिस्टर कारलाइल ने गंभीरता-पूर्वक कहा—"महारानी साहिबा ने मुझे लड़कों के खेल के लिये बुलाया था" इतना कहने के बाद मिस्टर कारलाइल ने अपनी टोपी उठाई, महारानी को प्रणाम किया, और महारानी की बिना आज्ञा लिए ही भरे दरबार में से बाहर निकल गए और घर पहुँचकर लिखने लगे।

---

(११) आप रेल में तीसरे दर्जे में क्यों चढ़ते हैं?

ग्लैडस्टन इँगलैंड का प्रधान मंत्री था। वह बड़ा विद्वान् तथा प्रसिद्ध आदमी था। वह वास्तव में धनी भी था तथापि वह सदा रेल के तीसरे दर्जे में ही सफ़र किया करता था। कुछ लोग इसे अच्छा समझते थे, परंतु कुछ लोग समझते थे कि वह प्रधान मंत्री की मर्यादा के विरुद्ध काम करता है। इँगलैंड के प्रधान मंत्री को दरिद्रों की तरह तीसरे दर्जे में कभी नहीं सफ़र करना चाहिए।

इँगलैंड का एक युवक इसका असली कारण जानना चाहता था। उसने इस संबंध में कई आदमियों से पूछा, परंतु किसी ने उसकी शंका का समाधान नहीं किया। जितने आदमी थे, उतनी ही बातें थीं।

अंत में उसने स्वयं ग्लैडस्टन से इसका कारण पूछने का विचार किया। उसने अपने मन में कहा कि कम-से-कम वह तो इसका ठीक कारण अवश्य जानते होंगे।

जब उसने ग्लैडस्टन से इसका कारण पूछा, तो उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—"मैं तीसरे दर्जे में इसी लिये सफ़र करता हूँ कि चौथा दर्जा नहीं है।"

---

(१२) इँग्लैंड का प्रिंसिपल

इँगलैंड देश में केंब्रिज एक प्रसिद्ध स्थान है। केंब्रिज के एक कॉलेज के एक प्रसिद्ध प्रिंसिपल का नाम मिस्टर जोंस था। वहाँ पर नोटिस लिखकर नहीं दी जाती। किंतु श्यामपट्ट पर खरिया मिट्टी से लिख दी जाती है। प्रिंसिपल साहब ने नीचे-लिखी हुई नोटिस उसी श्याम-पट्ट पर निकाल दी—

Mr. Jones will see his Classes tomorrow, at 10 O'Clock,

K. P. Jones.
Principal
8-8-31.

इस नोटिस के अनुसार लड़कों को दस बजे कॉलेज में आ जाना चाहिए था। परंतु चौकड़ी के कुछ विद्यार्थी साढ़े नौ बजे ही वहाँ पहुँच गए। इन लोगों को बदमाशी सूझी और इन लोगों ने Classes के प्रारंभ के C (सी) को उड़ा दिया। इसके अतिरिक्त इन लोगों ने नोटिस में कुछ भी परिवर्तन नहीं

किया। ठीक दस बजे प्रिंसिपल जोंस भी पहुँच गए। आते ही उन्होंने बोर्ड पर दृष्टि डाली। लड़कों की शैतानी समझने में उन्हें कुछ भी विलंब नहीं हुआ और एक क्षण के लिये वह सोचने लग गए। अंत में उन्होंने बचे हुए शब्द (Lasses) के पहले अक्षर L (एल्) को मिटा दिया और फिर पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। लड़के वास्तव में अपने व्यवहार पर बड़े ही लज्जित हुए।

(१३) बैल की मेम

ग़ाज़ीपुर-ज़िले में, सन् १९०५ ई० में, इँगलैंड से एक अँगरेज़ जज आए। वह यहाँ की भाषा बहुत कम जानते थे। घोड़ा और बैल, पानी और खाना, नौकर और मालिक तथा ऐसे ही दस-बारह हिंदी के शब्दों के अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानते थे। मैंने मोहन के ऊपर गाय चुराने का मुक़द्दमा दायर किया और वह मुक़द्दमा जज साहब के यहाँ पहुँचा। दोनों ओर के आदमी खड़े हो गए और अपनी-अपनी ओर से बहस करने लगे; परंतु जज साहब की समझ में यह बात नहीं आई कि गाय कौन-सा और कैसा जानवर होता है। सब लोग गाय की तरह-तरह की परिभाषा देने लगे, फिर भी जज साहब की समझ में ख़ाक नहीं आया, तो भी वकील समझाते ही रहे। एक ने कहा कि वह घोड़े के बराबर होती है और दूध देती है। इससे भी जज साहब ने कुछ नहीं समझा। पचासों तरह से वकीलों ने समझाया, सैकड़ों परिभाषाएँ दी गईं, परंतु सब-की-सब निष्फल हुईं; जज साहब की समझ में कुछ भी नहीं

आया। अंत में जज साहब ने कहा—"मैं कुछ नहीं जानता, तुम लोग उसे मेरे सामने ले आओ।" इसके बाद एक गाय जज साहब के सामने लाई गई। उसे देखकर जज साहब उछल पड़े। उन्होंने कहा—"तुम लोग बड़े बेवकूफ हो। यह गाय नहीं है, यह तो बैल की मेम है।"

---

(१४) मिस्टर गोल्डस्मिथ

मिस्टर गोल्डस्मिथ अँगरेजी-साहित्य के एक अच्छे कवि हो गए हैं। इनके मित्र मिस्टर जानसन थे। यह वही जानसन हैं, जो धुरंधर विद्वान्, प्रतिभाशाली समालोचक, अच्छे कवि और सिद्धहस्त नाटककार थे। जब यह भोजन करते थे, तो उनके मस्तक से हर-हर पसीना गिरने लगता था और सिर के बाल उठकर खड़े हो जाते थे।

मिस्टर गोल्डस्मिथ का जीवन दरिद्रता ही में कटा। परंतु जब कभी इन्हें कुछ रुपए मिल जाते थे, तो ये शीघ्र ही सब-के-सब उड़ा देते थे और फिर पहले की तरह निर्धन हो जाया करते। एक बार एक लेडी ने इन्हें पकड़ लिया। उसका किराया इन्होंने बहुत दिनों से नहीं दिया था। वह इनसे माँगती-माँगती थक गई; परंतु इन्होंने उसकी कुछ भी चिंता नहीं की। अंत में उसने इन्हें पकड़ा और कहा कि मेरा सब चुका दो, तभी मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ। अब यह बहुत घबराए। स्वयं तो इधर-उधर जा ही नहीं सकते थे, क्योंकि लेडी इन्हें छोड़ना

नहीं चाहती थी। परंतु इन्होंने एक आदमी को अपने मित्र मिस्टर जानसन के पास भेजा और उसके द्वारा अपना सब हाल कहला दिया।

मिस्टर जानसन इस समय एक बहुत ही अधिक आवश्यक काम में फँसे हुए थे। उन्होंने उस आदमी के द्वारा मिस्टर गोल्डस्मिथ के यहाँ एक गिन्नी भेजवा दी और उससे कह दिया कि मैं भी अभी वहाँ आता हूँ।

थोड़ी देर के बाद जब मिस्टर जानसन, मिस्टर गोल्डस्मिथ के यहाँ पहुँचे, तो उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्होंने लेडी को तब तक भी कुछ रुपया नहीं दिया था। जानसन के वहाँ पहुँचने के पहले ही मिस्टर गोल्डस्मिथ उस गिन्नी का शराब पी गए थे।

(१५) फ़ाक़ेमस्त

उर्दू के एक बहुत ही मशहूर कवि शराब पीने के आदी थे। फल-स्वरूप अपनी सारी संपत्ति उन्होंने शराब और कबाब में खो दी। अंत में उनकी दशा बहुत बुरी हो गई और दानों के लाले पड़ने लगे। जब अपनी सब संपत्ति ख़तम हो गई, तो उन्होंने क़र्ज़ ले-लेकर शराब पीना प्रारंभ कर दिया और इस बात का कुछ भी विचार नहीं किया कि अंत में इसका फल बुरा होगा। वह अपने को 'फ़ाक़ेमस्त' कहा करते थे और दूसरे लोग भी उनके बारे में प्रायः कहा करते थे कि वे 'फ़ाक़े-मस्त' हैं।

अंत में एक आदमी ने उनके ऊपर अपने रुपए का दावा किया, और उन्हें कचहरी में हाज़िर होना पड़ा। उस दिन कच-हरी में बड़ी भीड़ थी, सबके यहाँ कविजी की ही चर्चा छिड़ी थी, सब लोग अपने मन में यही सोचते थे कि देखें आज फ़ाक़ेमस्त क्या करते हैं। फ़ाक़ेमस्त भी कचहरी में पहुँच गए, उन्होंने चारों ओर सबको देखा, हँस पड़े और सबको नीचे

लिखा पद्य इस तरह से सुना दिया, मानो कोई दुर्घटना हुई ही न हो—

"क़र्ज़ की पीता था मय (शराब) लेकिन समझता था कि हाँ,
रंग लाएगी हमारी फ़ाक़ेमस्ती एक दिन।"

---

(१६) गदहे की शिकायत

जहाँगीर बादशाह अपनी न्याय-प्रियता के लिये सारे संसार में प्रसिद्ध है और उसकी न्याय-प्रियता के संबंध में कई कथाएँ कही जाती हैं। उसके कमरे में एक घंटी लगी थी और उसी से होकर एक जंजीर बाहर निकली रहती थी। जिस आदमी को जहाँगीर के यहाँ कुछ कहना होता था, वह इसी जंजीर को हिला देता था और बादशाह के कमरे की घंटी बज उठती थी। बादशाह जहाँगीर फ़ौरन् उस आदमी को अपने पास बुलाता था और उसकी सब बातें सुनता था और फिर अंत में वह अपना फ़ैसला सुना देता था।

आधी रात का समय, बिजली चमक रही थी और मूसलाधार पानी बरस रहा था। शेक्सपियर के शब्दों में चोर और डाकुओं के सिवा और कोई आदमी बाहर नहीं था। इसी समय जंजीर हिला, घंटी बजने लगी। बादशाह जहाँगीर जाग उठा, और उसने अपने मन में कहा कि कोई विपत्ति का सताया हुआ अपना दुखड़ा रोने आया है। वह फ़ौरन् उठ खड़ा हुआ

और नौकर से कहा कि जल्दी उस आदमी को यहाँ लाओ। नौकर ने ऊपर ही से पूछना प्रारंभ किया कि कौन है, कौन। परंतु किसी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, तथापि घंटी बजती ही चली गई। इस पर बादशाह जहाँगीर बिगड़ उठा। उसने अपने मन में कहा कि कोई बदमाश दिल्लगी कर रहा है और सोने में खलल डालना चाहता है। इसलिये उसने नौकर से कहा—"जाओ, उसे पकड़कर मेरे सामने अभी लाओ।" घंटी अभी भी बजती जाती थी।

कई नौकर दौड़े। इन लोगों ने जाकर देखा, एक गदहा जंजीर हिला रहा था और वहाँ से हटता नहीं था। इन लोगों ने उसे मार भगाया और बादशाह से सब बात जाकर कह दी। बादशाह फिर जाकर सो रहा।

थोड़ी देर के बाद फिर घंटी बजने लगी, बादशाह जहाँगीर फिर जग गया, फिर वही गदहा घंटी बजा रहा था। बादशाह फिर सोने चला गया।

जब फिर घंटी तीसरी बार बजी, तो बादशाह ने कहा कि हो न हो, इसमें कोई रहस्य अवश्य है। पता लगाओ कि यह गदहा किसका है। नौकरों ने बहुत पता लगाया, परंतु कुछ पता नहीं चला। बादशाह फिर जाकर सो गया।

जब चौथी बार घंटी बजी, तो जहाँगीर बादशाह को बहुत रंज

हुआ। उसने कहा कि इस गदहे को पहले बाँध लो और तब पता लगाओ कि किसी धोबी का गदहा खो गया है। चार दिन के बाद गदहे का मालिक बादशाह के पास लाया गया और उसने अपराध भी स्वीकार किया। जिस दिन गदहे ने घंटी बजाई थी, उसी दिन रात के ग्यारह बजे धोबी ने उस गदहे के दस डंडे मारे थे। बादशाह ने उसे दस दिन के लिये क़ैद कर दिया। दस दिन की क़ैद के बाद, जब धोबी को छुट्टी मिली, तो आज्ञानुसार वह बादशाह के सामने पेश किया गया। बादशाह ने उससे कहा—"अगर फिर यह गदहा फरियाद करने आया, तो तुम्हें काले पानी की सजा दी जायगी।"

---

(१७) धोबी का गदहा बेपता

इस साल प्रयोग के ट्रेनिंग कॉलेज में मिठाईलाल एल्० टी० में पढ़ते थे। ये अपने को दूसरे विद्यार्थियों से श्रेष्ठ समझते थे। यही कारण था कि वे किसी से मिलते नहीं थे। सभी विद्यार्थी कम-से-कम बी० ए० पास थे। उनमें से कुछ एम्०ए० पास थे। अतएव इनको मिठाईलाल का व्यवहार खटका। एक दिन चौकड़ी की मीटिंग हुई और बहुत बहस के बाद यह प्रस्ताव पास कर दिया कि किसी-न-किसी तरह से मिठाईलाल को छकाना चाहिए। उपाय, दिन, समय और आदमी सब बातें हो गईं।

रविवार का दिन था और संध्या का समय। इसी समय धोबी अपने गदहे पर कपड़ा लादकर ट्रेनिंग कॉलेज के बोर्डिंग-हाउस में आया, गदहे पर से कपड़े के पुलिंदों को जमीन पर पटक दिया। गदहे को छोड़ दिया और लड़कों को कपड़े देने लगा।

ज्यों ही लड़कों ने देखा कि धोबी आ गया है, त्यों ही दो लड़के मिठाईलाल के यहाँ पहुँचे और उन्होंने कहा—"यार

चलो, आज चौक चलें। हमें कागज तथा और भी कई चीजें खरीदनी हैं।"

मिठाईलाल ने कहा—"आज नहीं, किसी और दिन चला जायगा।"

यार लोगों ने कहा—"नहीं यार! आज ही चलो। बहुत-सी चीजें खरीदनी हैं। इनकी बड़ी सख्त जरूरत है।"

अंत में मिठाईलाल इन लोगों के साथ चौक चले गए। अभी धोबी कपड़ा दे ही रहा था।

कॉलेज के दस-पंद्रह लड़कों ने धोबी को घेर लिया। इनमें से प्रत्येक लड़के पहले अपना ही कपड़ा लेना चाहता था। इसका फल यह हुआ कि धोबी किसी का भी कपड़ा नहीं दे सका। ज्यों ही वह एक आदमी का कपड़ा देता था, त्यों ही दूसरा उससे कहता था—"यह नहीं हो सकता। पहले मेरा कपड़ा दो, पहले मेरा दो।"

दस मिनट तक इन लोगों ने धोबी को चारो ओर से घेर ही रक्खा और उसे कुछ काम नहीं करने दिया। इसके बाद लड़कों ने धोबी से कहा—"अच्छा! यहाँ पर किसी को भी कपड़ा मत दो हमलोग अपने-अपने रूम में चले जाते हैं, वहीं पर एक ओर से हम लोगों का कपड़ा पहुँचा दो।" बेचारे धोबी ने ऐसा ही किया और एक-एक करके सबका कपड़ा दे दिया

सब से पैसा वसूल किया, फिर सबसे गंदा कपड़ा लिया और उनके गट्ठर बनाए। अंत में उसने उन गट्ठरों को गदहे पर लादने का विचार किया परंतु गदहा नदारद। खोजने पर भी गदहे का कहीं पता नहीं था। धोबी ने अपने गदहे को बहुत खोजा बोर्डिंग-हाउस के चारों ओर छान डाला, बहुत परिश्रम किया, फिर भी गदहे का कुछ भी पता नहीं चला। अंत में वह अपने घर से दूसरा गदहा लाया, उस पर कपड़ा लादा और फिर चला गया; परंतु वह अपने मन में कहता था कि गदहा कैसे बे-पता होगा? उड़ गया, क्यों?

जब धोबी अपना गदहा खोजता था, तब बोर्डिंग-हाउस के सब विद्यार्थी हँस रहे थे। जितना ही वह खोज-खोजकर हैरान होता था, उतना ही वे लोग हँसते थे। धोबी किसी बाबू से पूछने में भी डरता था। उसने डरते हुए एक आदमी से कहा—"न-मालूम मेरा गदहा क्या हो गया।" इस बात को सुनकर उन्होंने अपनी हँसी रोककर तथा ऊपर से क्रोध दिखलाकर कहा—"बेवक़ूफ़, क्या मैंने तुम्हारा गदहा चुराया है?" इस पर धोबी ने कहा—"नहीं बाबू जी! नहीं बाबूजी!! मैं कहता हूँ वह हो क्या गया। बोर्डिंग-हाउस के लड़कों की, हँसी की आज वास्तव में सीमा नहीं थी।

संध्या हो गई, परंतु मिठाईलाल चौक से नहीं लौटे। बात

यह हुई कि उनके मित्र बहुत विलंब कर रहे थे। जब ये लोग चौक से चले, तो आठ बज गए। रात अँधेरी थी। इसलिये, इन लोगों को रास्ते में बड़ा कष्ट हुआ। अंत में ये लोग किसी तरह से बोर्डिंग-हाउस में पहुँचे और सब लोग अपने-अपने कमरे में चले गए। मिठाईलाल ने अपना कमरा खोला और उस ताख़ की ओर बढ़ने लगा, जहाँ पर उसने दियासलाई रक्खी थी। इस समय चारो ओर बड़ा अँधेरा था। ज्यों ही वह आगे बढ़ा, त्यों ही बड़े ज़ोर से उसके चेहरे पर चोट लगी। उसकी नाक कुछ कट गई और वह चोर-चोर करते हुए कमरे के बाहर भागा। बाहर आकर उसने झट किवाड़ बंद कर दिया और उस में जल्दी से ताला लगा दिया। इसके बाद वह चोर-चोर करके चिल्लाने लगा। यार लोग तो इसकी प्रतीक्षा में कटिबद्ध पहले से बैठे ही थे। इन लोगों ने मिठाईलाल के कमरे के आस-पास की रोशनी को भी बुझा दिया था, जिससे वहाँ चारो ओर अंधकार रहे। बोर्डिंग के सब विद्यार्थी मिठाई-लाल के कमरे के पास जमा हो गए और तरह-तरह की बातें करने लगे। इस समय सब लोग अपनी-अपनी हँसी रोक रहे थे।

एक ने कहा—"क्या यार! चोर को तुमने देखा है?"

मिठाईलाल ने कहा—"हाँ-हाँ, वह बड़ा भारी है।"

दूसरे ने कहा—"यार! चिल्ला क्या उठे थे?"

मिठाईलाल ने कहा—"यार! उसने मेरे मुँह पर लाठी मार दी।"

तीसरे ने कहा—"तो उसे पकड़ क्यों नहीं लिया?"

मिठाईलाल ने कहा—"यार! सारे को इसी में बंद कर दिया है।"

चौथे आदमी ने कहा—"चलो, किवाड़ खोलो, उसे पकड़ लिया जाय।"

मिठाईलाल ने कहा—"शायद अपने साथ छूरा लिए हो।"

पाँचवें ने कहा—"चलो, थाने पर इत्तिला कर दी जाय।"

कुछ लोग थाने पर जाने का बहाना करने लगे। इसी समय गदहे ने मिठाईलाल के कमरे के भीतर से, ज़ोर-ज़ोर से रेंकना प्रारंभ कर दिया। वास्तव में धोबी का गदहा मिठाईलाल के कमरे के भीतर बंद था। उसी ने एक लात उनके चेहरे पर जड़ दी थी।

अब मिठाईलाल की समझ में सब बात आ गई। अब उन्होंने समझा कि लड़के उन्हें बहकाकर चौक ले गए थे और धोबी को चारो ओर से घेरकर उसका गदहा उनके कमरे में बंद कर दिया था। सब लोगों ने उन्हें बहुत सम-झाया कि जाने दो, आपस में ऐसा हो ही जाता है, आपस

में हँसी-दिल्लगी हुआ ही करती है। परंतु मिठाईलाल ने एक न मानी और प्रिंसिपल साहब के यहाँ चार आदमियों के नाम नालिश ठोंक दी। चारो आदमी बुलाए गए, उनसे प्रश्न किए गए, उन्हें धमकियाँ दी गईं, परंतु उन लोगों ने कहा कि इस मामले में हम लोग कुछ नहीं जानते, इन्होंने झूठ ही हम लोगों का नाम लिखवा दिया है। प्रिंसिपल साहब ने असली बात के पता चलाने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु फल कुछ नहीं हुआ। अंत में प्रिंसिपल साहब ने इन चार आदमियों को डाँट-डपटकर छोड़ दिया और तब मिठाई-लाल से कहा—"देखो! आपस में इस प्रकार की हँसी-दिल्लगी होती ही रहती है। तुम्हें मेरे पास नहीं आना चाहिए था। जाओ और अब उनसे मिलकर रहो। अगर इस प्रकार तुम अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाओगे, तो लड़के तुम्हें और भी तंग करेंगे।"

जब मिठाईलाल प्रिंसिपल साहब के यहाँ से लौटे, तो लड़कों ने उन्हें सुना-सुनाकर आपस में बातचीत करना प्रारंभ कर दिया। एक ने कहा—"यार! मैं नहीं जानता कि वह गदहा था।"

दूसरे ने कहा—"'था' क्यों कहते हो, गदहा तो हई है।"

तीसरे ने कहा—"आखिर गदहा ही तो है।"

चौथे ने कहा—"गधे का गधा है।"

पाँचवें ने कहा—"वैसाख-नंदन है।"

अब मिठाईलाल इन लड़कों से अलग खिंचे रहते थे। एक दिन ट्रेनिंग कॉलेज के चार विद्यार्थी रात के दस बजे मिठाईलाल के कमरे की ओर देख रहे थे। परंतु किवाड़े बंद करके वह भीतर पढ़ रहा था। ये लोग बारह बजे तक आज उसकी प्रतीक्षा करते रहे। अंत में साढ़े बारह बजे मिठाईलाल बाहर आया, कमरे का ताला बंद किया और तब वह सो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मिठाईलाल उठे, तो अपने को एक ऐसी जगह में पाया, जहाँ का नाम लेना मैं अच्छा नहीं समझता और न आप लोग सुनना पसंद करेंगे। राम! राम!! वास्तव में वह बहुत बुरी जगह थी, चारो ओर से दुर्गंधि आ रही थी! पहले तो वह आश्चर्य करने लगे कि मैं कैसे यहाँ आ गया, फिर सब बात उनकी समझ में आ गई। इस बार उन्होंने प्रिंसिपल के यहाँ लड़कों की शिकायत नहीं की।

---

(१८) आपका कोट मेरी टोपी खोजने गया है

जब मैं स्टेशन पहुँचा, तो मुझे मालूम हुआ कि मेरी घड़ी आज रात में पाँच मिनट सुस्त हो गई थी। पहले तो मैं डर गया कि अब गाड़ी नहीं मिलेगी, परंतु कुली ने खूब जल्दी की, टिकट-बाबू ने जल्दी से टिकट दे दिया और मैं उस प्लैटफ़ार्म की ओर लपक पड़ा, जिस पर मेरी गाड़ी खड़ी थी। वहाँ पहुँचते-ही-पहुँचते गाड़ी ने सीटी दे दी; मैं जल्दी से एक फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में सवार हो गया, गाड़ी चल पड़ी। उस डिब्बे में पहले ही से एक सज्जन बैठे थे, मैं भी जाकर उनके पास बैठ गया और अपनी टोपी निकालकर रख दी। जब मैंने उनकी ओर देखा, तो उन्होंने ऐसी नाक-भौंह सिकोड़ी, मानो मैं अछूत था और मेरी उपस्थिति उन्हें असहनीय हो रही थी। मेरे पास ही उनका कोट खूँटी पर लटक रहा था। उन्होंने बड़े तपाक के साथ कहा—"देखिए, आप मेरे कोट को मत छूइए।" मैंने भी गरजकर कहा—"नहीं, मैं आपके कोट को नहीं स्पर्श करूँगा, परंतु आप भी मेरी टोपी मत छूइएगा।"

उन्होंने बिगड़कर कहा—"आप अपनी टोपी उठा लीजिए।"

मैंने कहा—"नहीं, मैं अपनी टोपी नहीं उठा सकता।"

इसके बाद उन्होंने भी कुछ नहीं कहा, मैं भी चुप हो गया। मैं अब अपने मन में प्रसन्न हो गया और कहा कि चलो अच्छा हुआ, बला टली, झगड़ा बढ़ जाता, तो फिजूल परेशानी होती। मैं अब रेल की सड़क के आस-पास की चीजों की ओर देखने लगा। पंद्रह मिनट तक मैं इधर-उधर देखता रहा। इसके बाद मैंने अपनी दृष्टि अपने सामान की ओर डाली। जब मैंने अपनी टोपी नहीं देखी, तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने अपना मुँह ऐसा बना लिया, मानो मैं कुछ जानता ही नहीं हूँ, तथापि मैंने चारो ओर अपनी टोपी खोजी। मैं अपने मन में कहने लगा—"आखिर टोपी हो क्या गई? क्या उड़ गई?" फिर मैंने अपने मन में कहा कि अगर टोपी उड़ती, तो इसी डिब्बे में रहती, वह बाहर कभी नहीं जाती। हवा की दिशा जानने के विचार से मैंने एक दूसरी हल्की चिट उड़ाई। उस रुख देखकर मैं समझ गया कि उड़ने पर भी टोपी बाहर नहीं जा सकती थी। अब मेरे मन में कुछ भी संदेह नहीं रह गया। मैं समझ गया कि दूसरे सज्जन ने ही मेरी टोपी उठाकर बाहर फेंक दी है।

दूसरे स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तो मैंने अपने नौकर को बुलाया और उससे पूछा कि मेरी टोपी क्या हुई। मैं टोपी के बारे में स्वयं जानता था कि मैंने टोपी इसी डिब्बे में रक्खी थी और इसी टोपी के संबंध में उक्त सज्जन से कहा-सुनी भी हो गई थी। नौकर से पूछने के कारण उन्होंने समझा कि मैंने टोपी के संबंध में उनकी कार्रवाई समझी ही नहीं। जब गाड़ी स्टेशन से छूटी, तो मैं अपनी जगह पर आकर बैठ गया, और वह निश्चिंत होकर लेट गए और एक झपकी मार ली। मैंने अवसर देख, उनका कोट उठाकर बाहर फेंक दिया।

दो स्टेशन के बाद वे उठे और उन्हों ने देखा कि कोट गायब है। अब वह बहुत घबराए और अपने कोट को इधर-उधर खोजने लगे। असली बात के समझने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने बिगड़कर मुझसे कहा—"उस कोट में सौ रुपए की एक घड़ी और कुछ नोट थे। कहिए, मेरा कोट क्या हुआ।" मैंने धीरे से उत्तर दिया—"आपका कोट मेरी टोपी खोजने गया है।"

---

(१६) मुंसिफ़ साहब और वकील

बिहारीमल बनारस के एक बहुत अधिक ही प्रसिद्ध वकील थे। इसीलिये ख़ून के मुक़द्दमे में प्रायः लोग इन्हीं को अपना वकील रखते थे। कई ख़ूनियों को इन्होंने बचा लिया था। इसी से इनका बड़ा नाम हो गया था और जब तक ऐसे मुक़द्दमे को ये ले लेते थे, तब तक दूसरे वकील को ख़ून के मुक़द्दमे में कोई नहीं रखता था।

आज भी एक ख़ून के मुक़द्दमे में ये वकील थे। वास्तव में आज कोर्ट में बड़ी भीड़ थी और सब लोग इनकी बहस सुनने के लिये बहुत उत्सुक थे। ठीक समय पर बिहारीमल भी आ गए और मुंसिफ साहब के इजलास में मुक़द्दमा शुरू हो गया। मुंसिफ साहब भी पहले वकील थे और इसी वर्ष मुंसिफ़ बनाए गए थे।

जब बिहारीमल मुंसिफ़ साहब की कचहरी में पहुँचे, तो जनता की दृष्टि उन पुस्तकों पर पड़ी, जो बिहारीमल के दो नौकर उनके पीछे-पीछे लिए जा रहे थे। जब इन लोगों

ने इन पुस्तकों को मुंसिफ़ साहब की टेबुल पर रक्खा, तो मुंसिफ़ साहब का भी ध्यान उधर गया, उन्होंने हँसकर बिहारीमल से कहा—"कहिए ! क्या आपको क़ानून याद नहीं है, जो आप इतनी पुस्तकें अपने साथ लिए चलते हैं ?"

बिहारीमल ने हँसकर उसी समय उत्तर दिया—"मुंसिफ़ साहब, ऐसी बात नहीं है। ये पुस्तकें आपको क़ानून बतलाने के लिये लाई गई हैं।"

इस हँसी को उन्होंने मजाक नहीं समझा। मुंसिफ़ साहब की भौंहें तन गईं, चेहरा बदल गया और क्रोध के सब लक्षण उनके चेहरे पर दिखलाई पड़ने लगे। उन्होंने बिगड़कर कहा—"मैं आपको एक सभ्य आदमी समझता था।"

बिहारीमल ने हँसकर उत्तर दिया—"मेरा ख़याल भी आपकी ओर से अभी तक ऐसा ही था।"

मुंसिफ़ साहब ने बिगड़कर कहा—"आप जानते हैं, आप किससे बातें कर रहे हैं ?"

बिहारीमल ने कहा—"जी हाँ, अच्छी तरह से जानता हूँ। भला आपको कौन नहीं जानता !"

बिहारीमल के कहने का ढंग इतना चुभता हुआ था कि इस समय कचहरी के सब लोग हँस पड़े, मुंसिफ़ साहब ने

भी इस व्यापक हँसी को देख लिया। उन्होंने उत्तेजित होकर कहा—"वकीलों में भी कुछ लोग बेवक़ूफ़ होते हैं।"

बिहारीमल ने कहा—"जी हाँ, आपका कहना बहुत सही है। वकीलों में कुछ बेवक़ूफ़ होते हैं, परन्तु वे अधिक दिन तक वकालत नहीं करते। वे तो जल्दी ही मुंसिफ़ बना दिए जाते हैं।"

(२०) सुंदरी के पीछे

जब मैं स्टेशन—बनारस छावनी—पर पहुँचा, तब एक बालिका ने मेरे ध्यान को हठात् अपनी ओर आकर्षित किया। उसकी अवस्था इस समय सोलह-सत्रह वर्ष से अधिक नहीं थी। उसकी चकोर की तरह बड़ी-बड़ी आँखें, चंद्रमा के समान मुख, साँपिनी की तरह अलक और लाल फूल के समान अधर हृदय को हठात् अपनी ओर आकर्षित करते थे। उसके दाँत अनार के दाने के समान और भृकुटी धनुष के समान थी। थोड़ी देर तक तो मैं अनिमेष नेत्रों से उसकी ओर देखता रह गया, फिर मैंने अपनी बड़ी कड़ी आलोचना की, अपने को धिक्कारा और मनोविज्ञान की दृष्टि से अपनी विवेचना करने लगा। परंतु रूप-राशि के उस सर्वश्रेष्ठ रत्न ने मेरे हृदय के अंतस्तल में जो चिनगारी पैदा कर दी थी, वह धीरे-धीरे सुलगने लगी। जिन आँखों को मैं उस बालिका से दूर रखना चाहता, वे बरबस उसी पर जा गिरतीं और बहुत प्रयत्न करने पर भी वहाँ से नहीं हटती थीं। जो हृदय आज तक

मेरा था, जिस पर मुझे आज तक नाज़ था, उसी ने मेरे विरुद्ध आज बग़ावत का झंडा खड़ा कर दिया और विद्रोही बन बैठा, मैं उस बालिका पर आसक्त हो गया।

बालिका अकेली थी, उसके पास और कोई नहीं था। उसके पास एक छोटा-सा हैंड-बेग रक्खा हुआ था और वह खड़ी इधर-उधर देख रही थी। वेष-भूषा के देखने से पता चलता था कि वह अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी है और कहीं जा रही है। मैं अपने मन में सोचने लगा कि यह बालिका कौन है, कहाँ जा रही है, क्या इसके साथ कोई नहीं है ? क्या वह अकेली है ? मन में आया कि उससे पूछूँ कि आप कहाँ जा रही हैं, परंतु साहस नहीं हुआ। इसी समय उस बालिका ने जामुन ख़रीदने का विचार किया, एक पैसे का मोल ले भी लिया; परंतु जामुन रखने के लिये उसके पास कोई चीज़ नहीं थी। इसी समय वह बालिका मेरी ओर बढ़ आई और कोमल स्वर में मुझसे कहा—"महोदय ! क्या आप मुझे 'लीडर' का 'कवर-पेज' दे सकते हैं ?" मेरी अंतरात्मा हिल गई, मेरा हृदय आनंद के मारे नाच उठा, मैंने अपना रूमाल उसके हाथ में दे दिया। परंतु उस लज्जाशील बालिका ने मेरा रूमाल लौटा दिया और मुझसे कहा—"नहीं-नहीं, मैं आपका रूमाल ख़राब नहीं करना चाहती। कृपया "लीडर का कवर-

पेज" ही मुझे दे दीजिए।" पहले तो मुझे कुछ बुरा लगा, परंतु फिर मैंने प्रसन्नता-पूर्वक उसे कवर-पेज दे दिया। इसी समय एक युवक आया, वह पहले मेरे पास खड़ा हो गया और बड़े ध्यान से उसी बालिका को देखने लगा। मैंने अपने मन में कहा कि बालिका के रूप का जादू इस युवक पर भी चल गया है। उसने थोड़ी देर तक उस अपूर्व सुंदरी की ओर देखा, फिर उसकी ओर बढ़ा और जाकर उससे कहा—"कहिए, कहाँ जाइएगा।" मैंने पहले तो युवक को बड़ा साहसी समझा, फिर उसके चरित्र की पवित्रता में संदेह करने लगा और मेरे मन में ईर्षा और डाह की अग्नि भभक उठी। मैंने अपने मन में कहा कि उसे उस बालिका से इस प्रकार प्रश्न करने का क्या अधिकार है। युवक के इस प्रश्न से बालिका कुछ सहम-सी गई; परंतु फिर थोड़ी देर के बाद उसने युवक की ओर आश्चर्यवत् देखा और फिर कहा—"मैं लखनऊ जाऊँगी।"

इतना कहने के बाद वह दूसरी ओर देखने लगी, मानो युवक की इस प्रकार की ढिठाई उसे अच्छी नहीं लगी। युवक ने फिर उससे कहा—"लखनऊ जानेवाली गाड़ी के आने में अभी बड़ी देरी है। तब तक क्या आप यहीं रहेंगी?"

बालिका ने कहा—"हाँ।"

युवक ने फिर कहा—"आपके साथ और कौन है?"

युवती ने हँसकर कहा—"कोई नहीं ?"

युवक—" श्रीमतीजी ! क्या आप पहलेपहल यहाँ आई हैं ? मेरी तो राय है कि इतने ही समय में आप दशाश्वमेध घाट से स्नान करके लौट आ सकती हैं। बहुत सुंदर घाट बने हुए हैं। क्या आपने उन्हें कभी देखा है ?"

युवती ने हँसकर उत्तर दिया—"कई बार।"

युवक—"तो क्या हुआ ? क्या इनकी सुंदरता देखने से कम थोड़े ही हो जाती है ? नहीं श्रीमतीजी ! नहीं, आप चलिए और एक बार और स्नान कर लीजिए। क्या मैं एक्का ले आऊँ ?"

युवती ने कहा—"नहीं, कदाचित् गाड़ी छूट जाय।"

युवक ने मुस्किराकर कहा—"गाड़ी कैसे छूट जायगी ? मैं भी तो साथ ही रहूँगा। अगर गाड़ी छूटेगी, तो एक्केवाले के नाक में दम न कर दूँगा। आप आज अवश्य स्नान कर लीजिए। मैं एक्का लेने जा रहा हूँ।"

इतना कहने के बाद युवक, बालिका के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही एक्का लाने के लिये चला गया और बालिका उसके मुँह की ओर देखती ही रह गई।

प्रारंभ से अंत तक मैं युवक तथा बालिका की बातचीत तथा व्यवहार को देखता रहा। न-मालूम, क्यों मैं नहीं

चाहता था कि बालिका उस युवक के साथ जाय। ज्यों ही युवक वहाँ से गया, त्यों ही मैं बालिका के पास चला गया और डरते-डरते उससे कहा—"श्रीमतीजी! मैं अपरिचित हूँ, अतएव कदाचित् आप मेरा विश्वास न करें। परंतु जहाँ तक मैं सोचता हूँ, यह युवक या तो स्वयं पंडा है या पंडा का नौकर है। मेरी तो राय है, आप इस युवक के साथ कदापि न जायँ।"

मेरी बात सुनकर बालिका खिल-खिलाकर हँस पड़ी, परंतु उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसी समय युवक फिर एक्का ठीक करके आ गया, बालिका भी उसके साथ चलने के लिये तैयार हो गई, मैं अपने मन में डर गया। मैंने कहा, ऐसा न हो कि युवक, बालिका को ले जाकर किसी कष्ट में डाल दे अथवा उसे जान से मार डाले। न-मालूम क्यों मैंने युवक के साथ इस प्रकार बालिका का जाना खतरे से खाली नहीं समझा। ऐसी कई दुर्घटना के संबंध में मैं पहले ही सुन चुका था और दो-एक के बारे में स्वयं जानता भी था।

बालिका ने हँसकर उस युवक से कहा—"यह एक्का तो रद्दी है। क्या कोई अच्छा एक्का नहीं मिला?" युवक फिर अच्छे एक्के की तलाश में चला गया। मुझे अब अच्छा अवसर मिल गया। मैं उस बालिका की ओर खसक

गया और तब उससे कहा—"श्रीमती जी ! क्षमा कीजिएगा । क्या आप उस युवक के साथ स्नान करने जायँगी ?"

बालिका ने मुस्किराकर कहा—"क्या हर्ज है ।"

मैंने कहा—"क्या आप उस युवक को जानती हैं ?"

बालिका ने मेरे इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया, वह हँस पड़ी, मैंने उस हँसी का कुछ भी आशय नहीं समझा। मैं और कुछ कहने ही जा रहा था कि उधर से वह युवक आता हुआ दिखलाई पड़ा, मैं घबरा गया और बालिका की आपत्ति की भावी शङ्का ने मेरे हृदय को व्याकुल कर दिया। मैंने अपनी जेब में से एक चाक़ू निकाला और उस बालिका के हाथ में देकर उससे कहा—"अच्छा ! आप मेरी बात नहीं मानती हैं। यह युवक अवश्य आपको धोखा देगा। मैं यह चाक़ू आपको दे रहा हूँ। आवश्यकता पड़ने पर आप इससे अपनी रक्षा किजिएगा।" उसने कहा—"मुझे इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। लीजिए, मैं इसे न लूँगी। मुझे यह नहीं चाहिए।"

परंतु मैंने उस चाक़ू को वापस लेना अच्छा नहीं समझा, मैं अलग हट गया। वह थोड़ी दूर तक चाक़ू देने के लिये मेरी ओर आई; परंतु मैं दूर हट गया। वह समझ गई कि मैं चाक़ू

अब वापस नहीं ले सकता। इसी समय उधर से युवक आ गया, एक्के पर बैठकर वह युवक के साथ चली गई।

मैंने अपने मन में कहा कि इन्हें इस प्रकार छोड़ना अच्छा नहीं। पहले तो मैंने अपने मन में आजकल की पढ़ी-लिखी बालिकाओं को खूब भला-बुरा कहा, फिर उस युवक के साहस के बारे में सोचने लगा। अंत में बालिका की सुंदरता ने मेरे उठते हुए सब भावों को दबा दिया, और मैंने उनका पीछा करने का निश्चय किया। परंतु अब उनका एक्का मेरी आँखों से ओझल हो गया था। इसलिये, मैंने किराए पर मोटर कर लिया और उस पर सवार हो गया। रास्ते में मैंने उन्हें परस्पर प्रेम-पूर्वक बातें करते तथा हँसते हुए देखा।

उनके पहले ही मैं दशाश्वमेध घाट पर पहुँच गया और वहाँ आकर मैं ठहर गया। थोड़ी देर के बाद ये भी आए। मैं छिपकर उन्हें देखने लगा। बालिका चलते समय मुझे और भी अधिक सुंदर दिखलाई पड़ी। सहसा मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हो गया कि पृथ्वी के उस भाग का धन्य भाग है, जहाँ उसके पैर पड़ते हैं। मैंने देखा, आगे-आगे वह युवक जा रहा था और पीछे-पीछे बालिका। दोनो घाट पर पहुँचे। एक पंडे के पास सब सामान रक्खा और गंगाजी में स्नान करने लगे। परमेश्वर! वह बालिका इस समय कितनी सुंदर मालूम पड़ती

थी ? बालिका का गोरा बदन पानी में और भी अधिक निखर गया, उसकी सुंदरता कुछ बढ़ती हुई मालूम पड़ी। अभी तक तो मैं इस दृश्य को देखता चला आया, परंतु अब उनका यों साथ-ही-साथ स्नान करना मेरे लिये असह्य हो गया। मन में आया कि पुलिस में खबर दिलवा दूँ कि वह युवक बालिका को बह-काए लिए चला जाता है, परंतु फिर मेरे मन में बालिका का ध्यान आ गया। मैंने कहा, बालिका को तंग करना अच्छा नहीं। मैं खून का घूँट पीकर चुप रह गया।

मेरे मन में यह भी डर था कि उस बालिका ने मेरी बातों को कहीं उस युवक से कह न दिया हो। परंतु फिर मैंने कहा कि चाहे जो हो, मैं अंत तक इनका पीछा करूँगा। स्नान करने के बाद बालिका ने पंडे को दक्षिणा दिया, फिर दोनो जाकर इक्के पर बैठे और स्टेशन पर पहुँच गए, टिकट लिया और दोनों एक ही डिब्बे में, एक ही साथ, बैठ गए और घुल-घुल-कर परस्पर बातें करने लगे। मैं दूर ही से यह सब तमाशा देखता रहा और उसी डिब्बे में, दूसरे कोने में, इस प्रकार बैठ गया कि मैं तो उन्हें देख सकूँ, परंतु वे मुझे न देख सकें। इस समय मेरे मन में कई भाव उत्पन्न हो रहे थे। जब मैं लखनऊ-स्टेशन के पास पहुँचा, तो अपने मन में निश्चय कर लिया कि अब मैं इनसे छिपकर नहीं रहूँगा और आवश्यकता

पड़ने पर युवक को फटकार भी दूँगा। लखनऊ-स्टेशन पर पहुँचते ही बालिका ने हाथी की सूँड़ की तरह एक लंबा घूँघट निकाल ली और युवक के साथ गाड़ी से उतर पड़ी। मैं समझ गया, दाल में अवश्य कुछ काला है; नहीं तो वह घूँघट क्यों निकालती। मैं आगे बढ़ा। युवक ने मुझे देखा और देखकर हँस दिया। मैं सहम गया। मैं अपने मन में कहने लगा कि क्या बालिका ने मेरी बातें इस युवक से कह दी हैं। मैंने देखा, कई आदमी युवक की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे लोग युवक की ओर लपके और उससे बातें करने लगे। उनकी बातों से मुझे पता चल गया कि वह बालिका उस युवक की स्त्री थी। मैं लज्जित हो गया और मुँह छिपाकर वहाँ से भागने के विचार से जोर-जोर चलने लगा। युवक समझ गया, वह मेरी ओर लपका। मैं और भी अधिक तेज भागा और पीछे फिरकर देखा भी नहीं; परंतु मेरे कानों में युवक की यह आवाज कई बार आई—"महोदय! अपना चाकू तो लेते जाइए।"

युगांतर-साहित्य-मंदिर की प्रथम पुस्तक—

श्रीअनूपलाल मण्डल, साहित्य-रत्न

लिखित

'समाज की वेदी पर'

पर

कुछ शुभ-सम्मतियाँ

सुप्रसिद्ध समालोचक श्री पं० अवधजी उपाध्याय—

× × अनुपम पुस्तक मिली। मैं उसी दिन सब पढ़ गया। बड़ी सुंदर है; बड़ी रोचक है। × × ×"

श्रीयुत वियोगी हरिजी—

"आपकी रचना 'समाज की वेदी पर' देखकर मेरा हृदय हठात् आपके साहित्य-प्रेम की ओर आकर्षित हो गया है। आपने यह बड़ी सुंदर पुस्तक लिखी है। भाषा और भाव दोनो में प्रतिभा दिखाई देती है। इस सुंदर रचना के लिये धन्यवाद और बधाई स्वीकार कीजिए।"

श्रीमान् पन्ना-नरेश—

"× × × पुस्तक वास्तव में बड़ी मनोहारिणी और शुष्क समाज को करुण-रस से अनुप्राणित करनेवाली है।"

श्रीमान् भारतेंद्रसिंहजी, मोहन-निवास, पन्ना—

"× × × आपके भाव-प्रवण हृदय के अंदर पतित समाज के लिये कैसी आग जल रही है। इसका पता पुस्तक में जगह-जगह पर मुझे मिला। भाषा का प्रवाह तो कमाल का है। × × ×"

श्रीमान् महाराज कुमार रघुवीरसिंहजी, बी० ए०—

पुस्तक सुंदर है। मानव-हृदय की उथल-पुथल, विशेषतया 'हसीना' के हृदय में भावों के संग्राम का अच्छी तरह चित्रित किया है।

श्रीयुत देवेंद्रनाथ गुहा, बी० ए०, बी० एल्०, मैनेजर लक्ष्मीपुर इस्टेट, पूर्णिया—

"The book is a delightful reading. It has been written with great care and judgment. It has depicted nicely the nature of the people in the present world."

दूसरी पुस्तक—

पं० अवध उपाध्याय-लिखित—'हास्य-सरोवर'

आपके सामने है।